कक्षा: सातवीं

विषय: सामाजिक विज्ञान

इतिहास

हमारा भारत-II

समग्र शिक्षा अभियान के तहत निशुल्क वितरण हेतू।

© BSEH, Bhiwani
Not to be republished

2022

मौलिक शिक्षा विभाग, हरियाणा

ई-पाठशाला

क्यूआर (QR) कोड से संबद्ध ई-सामग्री प्राप्त करने के लिए उपयोगकर्ताओं के लिए चरणबद्ध मार्गदर्शिका

प्रत्येक अध्याय के पहले पृष्ठ पर स्थित कोड बॉक्स को क्विक रिस्पांस कोड – क्यूआर (QR) कोड कहते हैं। यह आपको अध्याय में दिए गए विषयों से संबंधित ई-सामग्री, जैसे ऑडियो, वीडियो, मल्टीमीडिया, पाठ्य-सामग्री आदि को प्राप्त करने में सहायता करेगा। पहला क्यूआर कोड संपूर्ण ई-पाठ्यपुस्तक प्राप्त करने के लिए है और प्रत्येक अध्याय में दिए गए क्यूआर कोड उस अध्याय से संबंधित ई-सामग्री प्राप्त करने में मदद करेंगे। यह प्रक्रिया आपको आनंदपूर्ण तरीके से सीखने में मदद करेगी।

अपने मोबाइल फ़ोन या टेबलेट द्वारा निम्नवत् चरणों का पालन कर और ई-पाठशाला के माध्यम से ई-सामग्री प्राप्त करें।

1. प्ले स्टोर से ई-पाठशाला स्कैनर एप इंस्टॉल करें और इसे खोलें
2. क्यूआर कोड स्कैनिंग विंडो को तैयार रखें
3. स्कैनर से क्यूआर कोड को स्कैन करें
4. लिंक को सिलेक्ट एवं क्लिक करें
5. उपलब्ध ई-सामग्री का प्रयोग करें

डेस्कटॉप या लैपटॉप पर ई-पाठशाला द्वारा ई-सामग्री प्राप्त करने के लिए नीचे दिए गए चरणों का पालन करें– https://epathshala.nic.in/topics.php पर जाएँ और क्यूआर कोड के नीचे दिए गए एल्फान्यूमेरिक कोड को दर्ज करें।

दीक्षा

दीक्षा एप को गुगल प्लेस्टोर से डाउनलोड करें फिर नीचे दिए गए चरणों का पालन करें। **दीक्षा** का उपयोग करते हुए आप अपने स्मार्टफोन या टेबलेट से ई-सामग्री प्राप्त करें।

1. अपनी पसंदीदा भाषा का चयन करें
2. अपनी भूमिका चुनें–शिक्षक या विद्यार्थी
3. पहुँच प्रदान करें और एप को अनुमति दें
4. क्यूआर कोड को स्कैन करने के लिए टैप करें
5. कैमरा पाठ्यपुस्तक के क्यूआर कोड पर फोकस करें
6. क्लिक करके क्यूआर कोड से संबद्ध ई-सामग्री प्ले करें

डेस्कटॉप या लेपटॉप पर दीक्षा का उपयोग करते हुए ई-सामग्री प्राप्त करने के लिए नीचे बताए गए चरणों का पालन करें– https://diksha.gov.in/resources पर जाएँ और क्यूआर कोड के नीचे दिए गए एल्फान्यूमेरिक कोड को दर्ज करें।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

जन–गण–मन

जन–गण–मन अधिनायक जय हे
भारत–भाग्य–विधाता।
पंजाब सिंध गुजरात मराठा
द्राविड़ उत्कल बंग।
विंध्य हिमाचल यमुना गंगा,
उच्छल जलधि तरंग।
तव शुभ नामे जागे,
तव शुभ आशिष माँगे;
गाहे तव जय गाथा।
जन–गण मंगलदायक जय हे,
भारत–भाग्य–विधाता।
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय जय हे।।

भारत माता की जय।

सामाजिक विज्ञान

इतिहास

हमारा भारत-II

कक्षा सातवीं के लिए पाठ्यपुस्तक

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड
Board of School Education Haryana

मूल संस्करण :

© हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

संस्करण : **प्रथम - 2022**

संख्या : 1,50,000

मूल्य :

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना, इस प्रकाशन के किसी भी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटो प्रतिलिपि, रिकार्डिंग अथवा किसी विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा इसका संग्रहण और प्रसारण वर्जित है।

- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना, यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर पुनःविक्रय या किराये पर न दी जायेगी और न ही बेची जायेगी।

- सभी मानचित्र ArcGIS सॉफ्टवेयर के माध्यम से तैयार किए गए हैं। इस प्रक्रिया में कई मुक्त स्रोतों से जुटाए गए भू–आकृतिक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। सभी मानचित्रों का प्रति सत्यापन कर लिया गया है एवं अशुद्धियों को न्यूनीकृत करने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है, यद्यपि आधार मानचित्र की शुद्धता के आधार पर सीमांकन में बहिर्वेशन अथवा अंतर्वेशन की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि आधिकारिक और स्थापित मानचित्रों को ही आधार मानचित्रों के रूप में प्रयुक्त किया गया है तथापि मानचित्रों में कोई असंगतता यदि पाठकों के ध्यान में आती है, तो वे यथोचित प्रमाणों के साथ उसे शुद्धिकरण हेतु प्रस्तुत करने की कृपा करें।

- पाठ्यपुस्तक में प्रयुक्त चित्रों को विभिन्न पुस्तकों, संग्रहालयों और इंटरनेट पर उपलब्ध मुक्त स्रोतों से संग्रहीत किया गया है। चित्रों के प्रयोग का उद्देश्य विषयवस्तु का स्पष्टीकरण तथा छात्रों का घटनाओं, पात्रों और स्थानों से जुड़ाव करवाने का है। इन चित्रों को मात्र सामान्य सूचना एवं शैक्षिक उद्देश्यों के लिए ही प्रयोग किया गया है।

- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टीकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य मान्य नहीं होगा।

सचिव

मुद्रक : **सुप्रीम ऑफसेट प्रेस**, 133, उद्योग केंद्र एक्स.–1, ग्रेटर नोएडा, उ.प्र.

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

प्राक्कथन

समय परिवर्तन के साथ-साथ राष्ट्रीय उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा में परिवर्तन अति आवश्यक है ताकि विकास तीव्रतम गति से हो। विद्यालयी शिक्षा को प्रभावशाली, सकारात्मक व सुरुचिपूर्ण बनाने हेतु पाठ्यचर्या में समय-समय पर सकारात्मक बदलाव करना एक आवश्यक कदम है। वर्तमान में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अंतर्गत समस्त शिक्षण अथवा शैक्षणिक क्रियाओं के केन्द्र में छात्र हैं। इसलिए छात्रों की सीखने के प्रति रुचि बढ़ाने, उनका स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर स्वतन्त्र चिंतन विकसित करने के उद्देश्य से भी पाठ्यचर्या में परिवर्तन आवश्यक है। इस कार्य में शिक्षक की सहयोगी एवं मार्गदर्शक की भूमिका अपेक्षित रहती है।

इस प्रकार पाठ्यचर्या में बदलाव की आवश्यकता को देखते हुए, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड ने इतिहास विषय के विशेषज्ञों (जिनमें विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के शिक्षक शामिल थे) से विचार-विमर्श करके कक्षा छठी से दसवीं तक के इतिहास विषय के पाठ्यक्रम का विश्लेषण करते हुए नया पाठ्यक्रम तैयार किया है। इस पाठ्यक्रम को तैयार करते समय राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की उस भावना को ध्यान में रखा गया है जिसके अन्तर्गत विभिन्न विद्यालयी विषयों के माध्यम से छात्रों को भारत का उपयुक्त ज्ञान कराने की अनुशंसा की गई है। इस परिधि में भारतवासियों की सफलता की गाथाएँ तथा भविष्य की चुनौतियों का उल्लेख व भारत के सुदूर क्षेत्रों में बसने वाले समाज की ज्ञान परम्पराओं का विशेष समावेश करने की बात कही गई है। शिक्षा नीति-2020 के निर्देशों की अनुपालना इतिहास की इन पुस्तकों के माध्यम से करने का सार्थक प्रयत्न किया गया है।

परिवर्तित पाठ्यक्रम के अनुसार छठी कक्षा से लेकर दसवीं कक्षा तक क्रमशः हमारा भारत-I (कक्षा-6), हमारा भारत-II (कक्षा-7), हमारा भारत-III (कक्षा-8), हमारा भारत-IV (कक्षा-9) और भारत एवं विश्व (कक्षा-10) नाम से नई पाठ्यपुस्तकों को तैयार करवाते समय यह भी ध्यान रखा गया कि ये सरल, सुरुचिपूर्ण, सुग्राह्य व आकर्षक हों, ताकि छात्र आसानी से इनमें उपलब्ध ज्ञान को आत्मसात् कर स्थानीय एवं राष्ट्रीय तथा सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश से जुड़ें। छात्र ऐतिहासिक व सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्र और संविधान के प्रति निष्ठा, आत्मसम्मान व स्वाभिमान से ओत-प्रोत होकर स्वयं को एक सुसभ्य, सुसंस्कृत तथा सकारात्मक नागरिक के रूप में स्थापित कर सकें।

बोर्ड को इन पुस्तकों को प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है, साथ ही यह विश्वास भी है कि ये पाठ्यपुस्तकें छात्रों व शिक्षकों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगी। ये पाठ्यपुस्तकें अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ छात्रों के व्यक्तित्व के चहुंमुखी विकास में प्रभावी मार्गदर्शन करेंगी। पुस्तकों को भविष्य में श्रेष्ठतर तथा गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए आपके बहुमूल्य सुझाव आमंत्रित हैं।

अध्यक्ष
हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड
भिवानी

उपाध्यक्ष
हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड
भिवानी

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

इतिहास बोध

सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत आने वाले सभी विषय यथा इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र इत्यादि हमें दुनिया को समझने में मदद करते हैं। इस समझ के आधार पर हम अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को भविष्य में श्रेष्ठतर बनाने का सपना संजोते हैं और उसके लिए यथेष्ट उद्यम करते हैं। आज की दुनिया एकाएक निर्मित नहीं हुई, अपितु हजारों वर्षों से बहुत धीरे–धीरे समाज में घटने वाले परिवर्तनों का परिणाम है। इन परिवर्तनों की कहानी को उनके यथार्थ स्वरूप में समझना ही सम्यक् इतिहास बोध है।

प्राय: दो प्रकार के लोग हमारे ध्यान में आते हैं– एक वे लोग, जिन्होंने ऐसे सामाजिक परिवर्तनों को प्रारम्भ किया और उनका नेतृत्व किया तथा दूसरे वे जिनके जीवन इन परिवर्तनों से प्रभावित हुए। एक स्वाधीन और संप्रभु राष्ट्र के नागरिकों के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वे अपनी विद्यालयी शिक्षा के दौरान ही इतिहास की घटनाओं और काल–क्रम के परिवर्तनों को वस्तुपरक ढंग से समझें और उसी समझ के आधार पर राष्ट्र के भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने में अपना योगदान दें। किन्तु यह भी एक कटु सत्य है, कि दुनिया के अनेक देश लंबे समय तक औपनिवेशिक ताकतों की दासता के बंधक रहे हैं। इन ताकतों ने न केवल अपने अधीनस्थ राष्ट्रों के संसाधनों पर कब्जा करने के कुत्सित प्रयास किये, अपितु उन देशों के नागरिकों की इतिहास संबंधी समझ को भी नियंत्रित करने का प्रयत्न किया। इस नियंत्रण के लिए विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली इतिहास की विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों को एक उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। भारत भी लंबे समय तक औपनिवेशिक दासता से ग्रसित रहा। औपनिवेशिक शासकों ने भारतीय समाज को उसकी अस्मिता से विमुख करने के लिए हमारे नायकों, योद्धाओं, क्रांतिकारियों, संतों के योगदान को तोड़-मरोड़कर पाठ्यपुस्तकों में प्रस्तुत किया, वहीं दूसरी ओर विदेशी आक्रांताओं और विस्तारवादी शक्तियों के कृत्यों को उचित ठहराने तथा उनके भीषण प्रभावों को कम करके दिखाने की कोशिश भी इसी माध्यम से की गयी।

इस स्थिति के आलोक में यह आवश्यक हो जाता है कि स्वाधीन देश में इतिहास के प्रसंगों को वस्तुपरक ढंग से विद्यालयों में प्रारम्भ से ही छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाये तथा उनके वर्तमान को समझने और भविष्य की कल्पना बुनने की क्षमता का निर्माण करना इतिहास की पाठ्यपुस्तकों का एक प्रमुख दायित्व है।

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तकें इसी दिशा की ओर एक कदम हैं।

अध्यक्ष
हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड
भिवानी

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

कक्षा छठी से दसवीं

संरक्षक

प्रो. जगबीर सिंह, अध्यक्ष, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

डॉ. ऋषि गोयल, निदेशक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, हरियाणा, गुरुग्राम

मुख्य समन्वयक

डॉ. रमेश कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, अहड़वाला, बिलासपुर (यमुनानगर)

समन्वयक

डॉ. लक्ष्मी नारायण, प्राध्यापक (इतिहास), राजकीय मॉडल संस्कृति वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, ततारपुर इस्तमुरार (रेवाड़ी)

लेखक मंडल

डॉ. रमेश कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, अहड़वाला, बिलासपुर (यमुनानगर)

डॉ. लक्ष्मी नारायण, प्राध्यापक (इतिहास), राजकीय मॉडल संस्कृति वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, ततारपुर इस्तमुरार (रेवाड़ी)

डॉ. गुरमेज सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), डी.ए.वी. महाविद्यालय, सढौरा (यमुनानगर)

डॉ. संजीव कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, छछरौली (यमुनानगर)

डॉ. मनमोहन शर्मा, पूर्व अध्यक्ष (इतिहास विभाग), बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर (रोहतक)

डॉ. सुरेन्द्र कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), वैश्य महाविद्यालय, भिवानी

डॉ. यशवीर सिंह, प्राचार्य, जनता विद्या मंदिर गणपत राय रासीवासिया महाविद्यालय, चरखी दादरी

डॉ. नरेन्द्र परमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), पुरातत्व एवं इतिहास विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़

डॉ. सुखवीर सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), बंसीलाल राजकीय महाविद्यालय, लोहारू (भिवानी)

डॉ. बी.बी. कौशिक (दिवंगत), सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), पी.आई.जी. राजकीय महिला महाविद्यालय, जीन्द

श्री राम कुमार केसरिया, एक्सटैंशन लेक्चरर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, जीन्द

डॉ. राकेश कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, मातनहेल (झज्जर)

डॉ. अशोक कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महिला महाविद्यालय, गुरावड़ा (रेवाड़ी)

श्री विपिन शर्मा, पी.जी.टी. (इतिहास), महाराजा अग्रसैन कन्या वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, सिरसा

श्री कुन्दन लाल कालड़ा, सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, भटौली (यमुनानगर)

श्री सुरेश पाल, सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, भंभौल (यमुनानगर)

डॉ. दिलबाग बिसला, असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी), चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द

डॉ. दलजीत बिसला, पी.जी.टी. (इतिहास), राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, बराह कलां (जीन्द)

डॉ. धीरज कौशिक, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास) (अनुबंधित), दयाल सिंह कॉलेज, करनाल

डॉ. मनोज कुमार, पी.जी.टी. (इतिहास), राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, ग्योंग (कैथल)

डॉ. विनोद कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति शास्त्र), आर.के.एस.डी. कॉलेज, कैथल

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

श्री अजय सिंह, एक्सटेंशन लेक्चरर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, बिरोहड़ (झज्जर)
श्रीमती पूजा छाबड़ा, पी.जी.टी. (इतिहास), गीता निकेतन आवासीय विद्यालय, कुरुक्षेत्र
डॉ. नीरज कांत, पी.जी.टी. (इतिहास), राजकीय मॉडल संस्कृति वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, सांघी (रोहतक)
श्री पिरथी सैनी, प्रधानाचार्य, राजकीय कन्या वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, जगाधरी (यमुनानगर)
डॉ. हरीश चन्द्र झंडई, सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), एम.एल.एन. कॉलेज, यमुनानगर

सम्पादक मंडल

डॉ पवन कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (भूगोल विभाग) चौ. बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी
श्रीमती सुरिन्द्र कौर सैनी, पी.जी.टी. (अर्थशास्त्र), गीता निकेतन आवासीय विद्यालय, कुरुक्षेत्र
श्री जोगिन्द्र सिंह, पी.जी.टी. (हिन्दी), राजकीय उच्च विद्यालय, सिधनवा, बहल (भिवानी)
श्रीमती मीना रानी, हिन्दी अधिकारी, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार
डॉ. मुदिता वर्मा, सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार
श्री अरविंद कुमार, पी.जी.टी. (अंग्रेजी), राजकीय उच्च विद्यालय, सांचला (फतेहाबाद)
श्रीमती सीमा गुप्ता, टी.जी.टी (सामाजिक अध्ययन), गीता निकेतन आवासीय विद्यालय, कुरुक्षेत्र
श्री नीरज अत्री, प्रेजीडेंट, नेशनल सेंटर फॉर हिस्टोरीकल एंड कम्पारेटीव स्टड्ीज, पंचकूला
श्री अश्विनी शाडिल्य, पी.जी.टी. (हिन्दी), जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, पंचकूला
श्री राजेश कुमार, डी.टी.पी. ऑपरेटर, चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

समन्वय सहायक

श्री चांद राम शर्मा, सहायक सचिव, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी
श्रीमती सन्तोष नरवाल, सहायक सचिव, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी
श्री नेपाल सिंह, अधीक्षक, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

तकनीकी सहयोग, ग्राफिक्स एवं साज-सज्जा

श्री कुलदीप कुमार, ग्राफिक डिजाइनर (अनुबंधित), चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
श्री भारत सैनी, ग्राफिक डिजाइनर, कुरुक्षेत्र

पुनरीक्षण एवं अनुमोदन समिति

प्रो. के. रत्नम, सदस्य सचिव, भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद (आई.सी.एच.आर.), नई दिल्ली
प्रो. ज्ञानेश्वर खुराना, सेवानिवृत प्रोफेसर (मध्यकालीन इतिहास) व भूतपूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
प्रो. विघनेश कुमार त्यागी, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उत्तर प्रदेश)
डॉ. प्रियतोश शर्मा, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़
प्रो. सुरजीत कौर जॉली, सेवानिवृत प्राचार्या, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ. प्रशान्त गौरव, एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चण्डीगढ़
डॉ. अंजलि जैन, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक
डॉ. पी. सी. चान्दावत, सेवानिवृत प्राचार्य, एन.डी.बी. राजकीय महाविद्यालय, नोहर, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आभार

ये पुस्तकें अनेक इतिहासकारों, शिक्षाविदों और शिक्षकों के सामूहिक प्रयत्नों का प्रतिफल है। इन पुस्तकों के लेखन और संशोधन में लम्बा समय लगा है। ये पुस्तकें विभिन्न कार्यशालाओं एवं बैठकों में हुई चर्चाओं और विचारों के आदान–प्रदान से उपजी हैं। इस प्रक्रिया में विभिन्न लोगों ने अपनी–अपनी क्षमता और योग्यता के अनुरूप पूर्ण सहयोग दिया है।

हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड एवं राज्य शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् हरियाणा ने इन पुस्तकों के निर्माण की प्रेरणा पद्म भूषण श्री दर्शन लाल जैन (दिवंगत) एवं प्रख्यात इतिहासकार प्रोफेसर सतीश चंद्र मित्तल (दिवंगत) से ली। शिक्षा बोर्ड, प्रदेश के शिक्षा मंत्री श्री कंवर पाल तथा विद्यालयी शिक्षा के अतिरिक्त मुख्य सचिव डॉ. महावीर सिंह, भा.प्र.से. का आभार व्यक्त करता है, कि उन्होंने पुस्तकों को तैयार कराने का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड को दिया। इन पुस्तकों को तैयार करने में अनेकों व्यक्तियों, संस्थाओं एवं संगठनों ने मदद की है। इस कार्य में दिए गए सहयोग के लिए हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड एवं राज्य शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (हरियाणा), दिल्ली, पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में स्थित विभिन्न संग्रहालय एवं पुस्तकालय के संचालकों का आभार व्यक्त करता है। पुस्तकों में लिए गए व्यक्तियों, अभिलेखों, स्मारकों, मूर्तियों, खुदाई में मिले पुरातात्विक अवशेषों, मिट्टी के बर्तनों, उपकरणों के व अन्य चित्रों के लिए हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, राज्य शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, हरियाणा पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, लोकसभा गैलरी एवं विभिन्न इंटरनेट वेबसाइट्स का भी आभार व्यक्त करता है।

हमने पुस्तक में सहयोग के लिए सभी के आभार–ज्ञापन का प्रयास किया है लेकिन अगर किसी व्यक्ति या संस्था का नाम छूट गया है तो इस भूल के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

निदेशक
राज्य शैक्षणिक अनुसंधान
एवं प्रशिक्षण परिषद हरियाणा
गुरुग्राम

[1][भाग 4क]

मूल कर्त्तव्य

51 क. मूल कर्त्तव्य–भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह–

क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।

ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्चच आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।

घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।

ड) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है।

च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे।

छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे।

ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।

ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़तेर हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

[2][ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 11 द्वारा (3-1-1977 से) अंत:स्थापित।

2. संविधान (छियालीसवां संशोधन) अधिनियम, 2002 की धारा 4 द्वारा (1-4-2010 से) अंत:स्थापित।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

विषय सूची

अध्याय 1	हर्षवर्धन और तत्कालीन समाज	01-16
अध्याय 2	दक्षिण के राज्य : चालुक्य, पल्लव एवं चोल	17-33
अध्याय 3	त्रिपक्षीय संघर्ष : पाल, प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट	34-47
अध्याय 4	विश्व में भारतीय संस्कृति का प्रसार	48-59
अध्याय 5	प्राचीन भारत में शिक्षा, साहित्य एवं कला	60-69
अध्याय 6	राजा दाहिर एवं राजा आनन्दपाल	70-79
अध्याय 7	सुहेलदेव एवं पृथ्वीराज चौहान	80-91
अध्याय 8	उत्तर भारत के तेरहवीं से पंद्रहवीं सदी के राज्य	92-109
अध्याय 9	विजयनगर साम्राज्य	110-127

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

भारत का संविधान

भाग–3 (अनुच्छेद 12–35)

(अनिवार्य शर्तों, कुछ अपवादों और युक्तियुक्त निर्बंधान के अधीन)

द्वारा प्रदत्त

मूल अधिकार

समता का अधिकार

- विधि के समक्ष एवं विधियों के समान संरक्षण।
- धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर।
- लोक नियोजन के विषय में।
- अस्पृश्यता और उपाधियों का अंत।

स्वातंत्र्य–अधिकार

- अभिव्यक्ति, सम्मेलन, संघ, संचरण, निवास और वृत्ति का स्वातंत्र्य।
- अपराधों के लिए दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण।
- प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण।
- छः से चौदह वर्ष की आयु के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा।
- कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

- मानव के दुर्व्यापार और बलात्‌ श्रम का प्रतिषेध।
- परिसंकटमय कार्यों में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध।

धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

- अंत:करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार की स्वतंत्रता।
- धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता।
- किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के संबंध में स्वतंत्रता।
- राज्य निधि से पूर्णतः पोषित शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के संबंध में स्वतंत्रता।

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

- अल्पसंख्यक–वर्गों को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति विषयक हितों का संरक्षण।
- अल्पसंख्यक–वर्गों द्वारा अपनी शिक्षा संस्थाओं का स्थापन और प्रशासन।

सांविधानिक उपचारों का अधिकार

- उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के निर्देश या आदेश या रिट द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने का उपचार।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अध्याय - 1

हर्षवर्धन और तत्कालीन समाज

आओ जानें

- हर्षवर्धन का जीवन एवं वंश
- हर्षवर्धन की प्रमुख विजय एवं शासन प्रबंध, सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था
- कला, कलम एवं तलवार का धनी तथा दानी सम्राट
- ह्वेनसांग का विवरण

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

सम्राट हर्षवर्धन पुष्यभूति वंश के महान शासक थे। जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी भारत वर्ष को एकता के सूत्र में बांधा। आइये इनके बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करें। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद समस्त भारतवर्ष छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया। ये छोटे-छोटे राज्य एक-दूसरे से आपस में झगड़ते रहते थे। इसी समय हुए हूणों के आक्रमणों ने स्थिति को और भी अधिक खराब बना दिया। ऐसे समय में पुष्यभूति ने थानेश्वर में पुष्यभूति नामक वंश की स्थापना की। इस वंश के शासकों का वर्णन इस प्रकार से किया जा सकता है :

पुष्यभूति वंश के शासक

नरवर्धन, राज्यवर्धन तथा आदित्यवर्धन (505 ई.-580 ई.) : हर्षवर्धन के कवि बाणभट्ट की रचना से तथा बांसखेड़ा व मधुबन के ताम्रपत्र अभिलेखों से हमें जानकारी मिलती है कि नरवर्धन, राज्यवर्धन व आदित्यवर्धन इन तीनों शासकों ने 505 ई. से 580 ई. तक शासन किया। ये तीनों शासक पूर्णरूप से स्वतंत्र नहीं थे। इसी कारण उन्होंने 'महाराज' की उपाधि धारण की।

प्रभाकरवर्धन (580 ई.-605 ई.) : प्रभाकरवर्धन पुष्यभूति वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक था। उसने 'महाराजाधिराज' तथा 'परम भट्टारक' की उपाधियां धारण की। उसने 580 ई. से 605 ई. तक शासन किया। उसने अपने शासनकाल में अनेक युद्धों में भाग लिया। बाणभट्ट ने उसकी प्रशंसा में हूणों के लिए 'शेर' तथा सिन्धु देश के लिए 'ज्वर' बताया है। प्रभाकरवर्धन की तीन संतानें थी - राज्यवर्धन, राज्यश्री तथा हर्षवर्धन।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

राज्यवर्धन (605 ई.-606 ई.) : प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद 605 ई. में उसका बड़ा पुत्र राज्यवर्धन थानेश्वर के सिंहासन पर बैठा। उसने भी 'महाराजाधिराज' एवं 'परमभट्टारक' की उपाधियां धारण की। वह भी अपने पिता की भांति वीर एवं साहसी था। उसे अपने शासनकाल के आरम्भिक दिनों में ही एक संकट का सामना करना पड़ा था। उसे दूतों द्वारा यह दर्दनाक सूचना मिली कि मालवा के शासक देवगुप्त, गौड़ प्रदेश के राजा शशांक तथा वल्लभी के राजा ध्रुवसेन ने संयुक्त रूप से उसके बहनोई कन्नौज के शासक गृहवर्मन मौखरी के साथ युद्ध करके हत्या कर दी तथा उसकी बहन राज्यश्री को बंदी बना लिया। यह समाचार सुनकर राज्यवर्धन अत्यन्त क्रोधित हो उठा। वह तुरन्त ही दस हजार सैनिकों के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। इस संकट के समय राज्यवर्धन के छोटे भाई हर्षवर्धन ने भी उसके साथ जाने का आग्रह किया किंतु राज्यवर्धन ने यह कहते हुए इंकार कर दिया कि 'हिरण का शिकार करने के लिए एक ही शेर पर्याप्त है।' राज्यवर्धन ने इस युद्ध में साहस का परिचय देते हुए मालवा के शासक देवगुप्त को पराजित कर दिया परन्तु गौड़ प्रदेश के राजा शशांक ने धोखे से 606 ई. में राज्यवर्धन की हत्या कर दी।

हर्षवर्धन का आरम्भिक जीवन

चित्र-1.1 हर्षवर्धन के किले के अवशेष (थानेसर)

चित्र-1.2 हर्षवर्धन के किले के अवशेष (थानेसर)

जन्म : हर्षवर्धन का जन्म 4 जून 590 ई. को थानेश्वर के विशाल राज्य में हुआ। हर्षवर्धन के जन्म के बाद कई दिनों तक समस्त राज्य में उत्सव मनाया गया था।

माता-पिता : हर्षवर्धन की माता का नाम यशोमति देवी तथा पिता का नाम प्रभाकरवर्धन था। हर्षवर्धन अपनी माता की भांति सहनशील तथा पिता की भांति साहसी एवं प्रतापी राजा था।

भाई एवं बहन : हर्षवर्धन तीन भाई-बहन थे। सबसे बड़े भाई का नाम राज्यवर्धन व बड़ी बहन का नाम राज्यश्री था। हर्षवर्धन सबसे छोटे थे। हर्षवर्धन अपने भाई का बहुत आदर करता था तथा अपनी बहन से अथाह प्रेम करता था।

शिक्षा : हर्षवर्धन बहुत ही विद्वान एवं बुद्धिमान था जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि हर्षवर्धन की शिक्षा-दीक्षा का उचित ढंग से प्रबंध किया था।

शास्त्राभ्यास व युद्धाभ्यास : हर्षवर्धन का बचपन उनकी माता यशोमति के भतीजे 'भंडी' के साथ बीता था। निरन्तर शस्त्राभ्यास व युद्धाभ्यास से वह एक श्रेष्ठ घुड़सवार योद्धा बने। हर्ष के दरबारी कवि बाणभट्ट की रचना 'हर्षचरित' से यह जानकारी मिलती है कि जब हर्षवर्धन प्रतिदिन युद्धाभ्यास करते थे तो शस्त्रों के निशानों से उनके हाथ काले पड़ जाते थे।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते हैं?

सम्राट हर्षवर्धन के राज्य की प्रथम राजधानी थानेसर (स्थाणेश्वर) सरस्वती नदी के किनारे स्थित थी और हर्ष का टीला पहले किला था जिसकी 52 बुर्जियां थी।

थानेसर राज्य में राज्याभिषेक (606 ई.-647 ई.) : बड़े भाई की आकस्मिक मृत्यु के उपरांत, मात्र 16 वर्ष की आयु मे प्रधानमंत्री भंडी के परामर्श से हर्षवर्धन का राज्याभिषेक 606 ई. मे थानेसर में किया गया।

कन्नौज की प्राप्ति : राज्याभिषेक के उपरांत हर्ष ने सबसे पहले अपने शत्रुओं से बदला लिया। उस समय हर्षवर्धन को पता चला कि राज्यश्री कारागार से भागकर विंध्याचल के जंगलों में चली गई है। हर्षवर्धन ने दिवाकरमित्र नामक बौद्ध संन्यासी की सहायता से अपनी बहन को खोज लिया। उस समय वह सती होने जा रही थी। हर्षवर्धन अपनी बहन को सकुशल देखकर प्रसन्न हो गया। जब हर्षवर्धन अपनी बहन के साथ कन्नौज पहुंचे तो प्रजा ने उनका भव्य स्वागत किया। राज्यश्री के आग्रह पर हर्ष ने थानेसर को कन्नौज में मिला कर अपनी राजधानी कन्नौज को घोषित कर दिया। थानेसर तथा कन्नौज के मिलने से हर्षवर्धन की ताकत दोगुनी हो गई। इस प्रकार अपनी आरम्भिक समस्याओं पर काबू पाते ही हर्ष ने अपना विजय अभियान शुरू कर दिया।

हर्षवर्धन की प्रमुख विजय

हर्षवर्धन एक कुशल योद्धा व सेनापति थे। उनकी प्रमुख विजय व साम्राज्य विस्तार निम्न प्रकार से हैं :

गौड़ प्रदेश की विजय

गौड़ (बंगाल) का शासक शशांक हर्ष का सबसे बड़ा शत्रु था। वह शैव मत को मानता था। वह बौद्ध मत का घोर विरोधी था। उसने पवित्र 'गया' का बौद्ध वृक्ष भी कटवा दिया था। शुरू में हर्ष ने भंडी को सेना के साथ गौड़ पर आक्रमण करने के लिए भेजा परन्तु भंडी और सेना उसका पूरी तरह से दमन नहीं कर सके। बाद में हर्ष ने कामरूप के राजा 'भास्करवर्मन' से संधि कर ली तथा इन दोनों ने मिलकर शशांक को बुरी तरह से पराजित किया। अंत में शशांक को युद्ध छोड़कर जान बचाकर भागना पड़ा।

पांच प्रदेशों की विजय

ह्वेनसांग के अनुसार हर्षवर्धन ने अपने शासनकाल के प्रारम्भिक 6 वर्षों (606 ई. से 612 ई. तक) पांच प्रदेशों के शासकों से निरंतर युद्ध किए। इन युद्धों के अंत में हर्ष की ही विजय हुई और हर्ष ने इन्हें अपने राज्य में मिला लिया। ये पांच राज्य पंजाब, कन्नौज, बिहार, बंगाल और उड़ीसा थे। इन विजयों से हर्ष की प्रतिष्ठा व कीर्ति बढ़ गई थी।

वल्लभी की विजय

हर्षवर्धन के समय में 'वल्लभी' (गुजरात) एक शक्तिशाली व संपन्न राज्य था। भौगोलिक दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण था। हर्षवर्धन ने 630 ई. में एक विशाल सेना के साथ वल्लभी पर आक्रमण कर दिया। वहां ध्रुवसेन द्वितीय का शासन था। इस युद्ध में ध्रुवसेन की पराजय हुई और उसे भड़ौच के राजा दद्दा द्वितीय के पास शरण लेनी पड़ी। दद्दा के कहने पर हर्ष ने ध्रुवसेन का राज्य उसे लौटा दिया तथा ध्रुवसेन ने हर्षवर्धन की अधीनता स्वीकार कर ली। हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह ध्रुवसेन से करके उसे अपना जमाता बना लिया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

कामरूप की विजय

हर्षवर्धन ने कामरूप (असम) के शासक भास्करवर्मन को पराजित करके उसके राज्य को भी अपने अधीन कर लिया था किन्तु हर्ष ने शशांक को हराने के लिए भास्करवर्मन की सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उसे उसका राज्य वापस कर दिया। भास्करवर्मन ने हर्ष की अधीनता पहले ही स्वीकार कर ली थी। कन्नौज सम्मेलन के दौरान उसने कई हाथी उपहार में दिए थे।

सिंध की विजय

प्रभाकरवर्धन ने सिंध के राजा को पराजित करके सिंध पर अधिकार कर लिया था किन्तु उसकी मृत्यु के बाद अराजकता का लाभ उठाकर सिंध ने पुनः स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। हर्ष ने अपनी स्थिति सुदृढ़ करके सिंध पर आक्रमण कर एक प्रभावशाली विजय प्राप्त की।

कश्मीर की विजय

हर्षवर्धन के शासनकाल में कश्मीर का राजा दुर्लभवर्धन था। ऐसा माना जाता है कि कश्मीर के एक विहार में महात्मा बुद्ध का एक पवित्र दांत रखा था जिसमें सदैव रोशनी रहती थी। हर्ष ने कश्मीर के राजा दुर्लभवर्धन को हराकर बलपूर्वक उससे अधीनता स्वीकार करवाई तथा महात्मा बुद्ध का पवित्र दांत ले जाकर कन्नौज के विहार में स्थापित करवाया।

नेपाल की विजय

बाणभट्ट के अनुसार हर्ष द्वारा बर्फीले प्रदेश में आक्रमण कर विजय प्राप्त की गई थी। कुछ इतिहासकारों का अनुमान है कि यह नेपाल ही होगा। इसका कारण यह भी है कि नेपाल के शासक अंशुवर्मन ने अपने राज्य में 'हर्षसंवत' का प्रचलन आरम्भ किया था जो यह प्रमाणित करता है कि अंशुवर्मन ने भी हर्षवर्धन की अधीनता को स्वीकार किया था।

गंजम विजय

हर्ष की अंतिम विजय गंजम (उड़ीसा) की थी। यह प्रदेश पूर्वी तट (उड़ीसा) पर स्थित है। इस क्षेत्र पर हर्ष के आरम्भिक आक्रमण सफल नहीं रहे। अंत में 643 ई. में वह इस पर विजय प्राप्त करने में सफल रहा क्योंकि इस समय पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु हो चुकी थी जो उसका समकालीन शासक था। उड़ीसा के 80 नगरों को उसने स्थानीय बौद्ध मंदिर को दान में दे दिया था।

- **राज्याभिषेक : राजसिंहासन या गद्दी पर बैठने के समय होने वाला वैदिक संस्कार, राजतिलक**
- **विहार : बौद्ध भिक्षुओं के रहने की जगह**
- **अराजकता : राजा न होने की स्थिति में फैली अव्यवस्था**
- **संवत : समय गणना का भारतीय मापदंड**

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

हर्ष का साम्राज्य : हर्षवर्धन ने अपने सैनिक अभियानों के परिणामस्वरूप एक विशाल साम्राज्य की नींव रखी। उसका साम्राज्य उत्तर में कश्मीर से दक्षिण में विंध्याचल तक पूर्व में कामरूप से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक फैला हुआ था।

विदेशों के साथ संबंध : हर्ष ने विदेशों के साथ भी बहुत अच्छे संबंध स्थापित किए थे। विदेशों से व्यापार होता था। विदेशों में राजदूत भेजे जाते थे तथा भारत में विदेशी यात्री भी आते थे। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग भी हर्षवर्धन के समय में ही भारत आया तथा आठ वर्ष हर्ष के दरबार में ही रहा। ह्वेनसांग को 'यात्रियों का राजकुमार' कहा जाता है।

पुलकेशिन द्वितीय के साथ युद्ध : हर्षवर्धन उत्तर भारत का सबसे शक्तिशाली शासक था तो दूसरी ओर पुलकेशिन द्वितीय दक्षिणी भारत का शक्तिशाली शासक था। हर्ष की भांति ही वह भी एक महत्वाकांक्षी राजा था। हर्ष द्वारा वल्लभी पर विजय के बाद पुलकेशिन द्वितीय शंकित हो गया और युद्ध अनिवार्य हो गया था। हर्ष ने पुलकेशिन का सामना करने के लिए पांच प्रदेशों से सेना एकत्र कर ली थी और 633 ई. में सेना के साथ हर्ष ने पुलकेशिन पर आक्रमण कर दिया। यह युद्ध नर्मदा नदी के किनारे पर हुआ। इस युद्ध में हर्ष की पराजय हुई।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

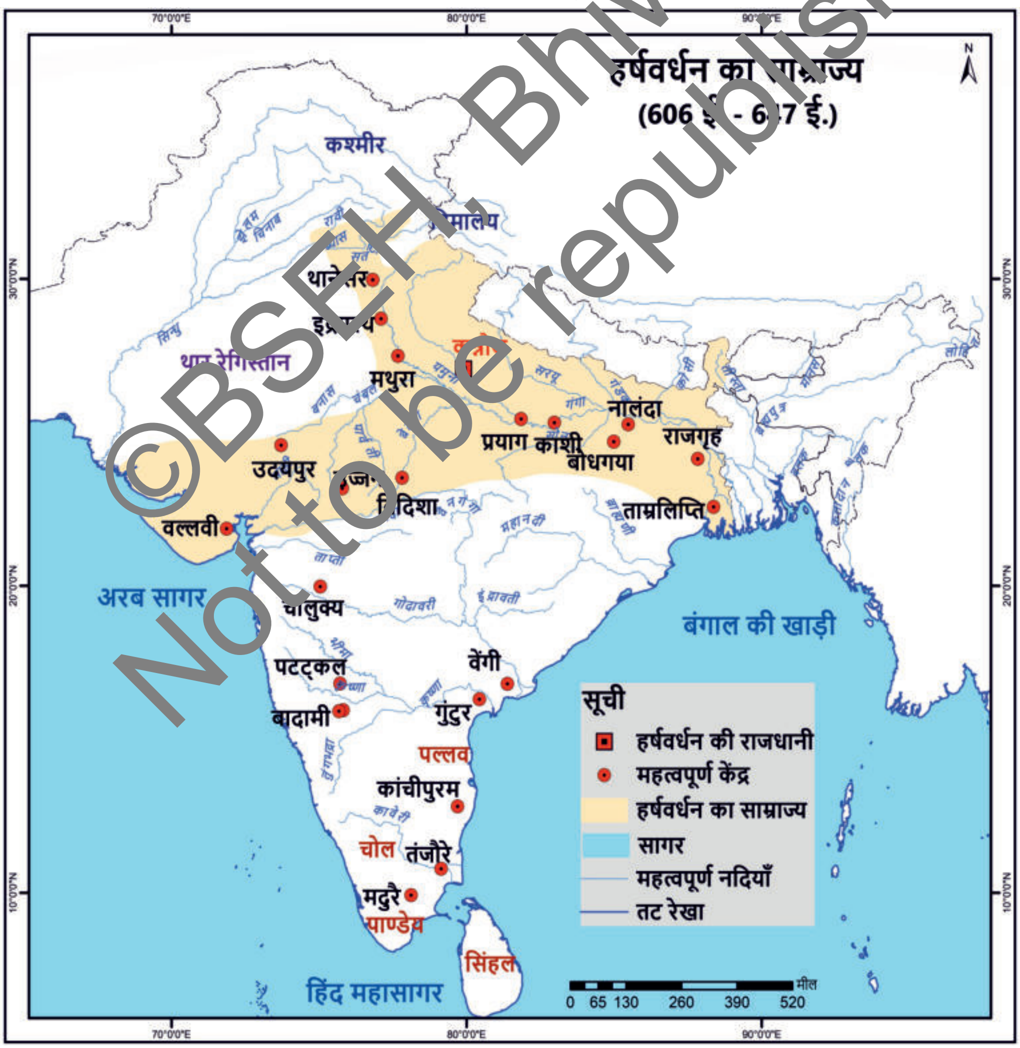

मानचित्र-1.1 - हर्षवर्धन का साम्राज्य

हर्ष का शासन-प्रबंध

हर्षवर्धन न केवल एक महान विजेता और साम्राज्य-निर्माता ही था अपितु एक कुशल शासन-प्रबंधक भी था। उसने अपने साम्राज्य में उच्च कोटि की शासन-प्रणाली स्थापित की थी। उस समय शासन व्यवस्था का स्वरूप इस प्रकार से था :

1 **राजा :** हर्षवर्धन, राज्य का सर्वोच्च अधिकारी था। उसने 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर', 'परमभट्टारक', 'सार्वभौम', 'सकलोत्तरपथनाथ', 'शिलादित्य' आदि उपाधियां धारण की थी। राजा की शक्तियां असीमित होती थी। वह सेना का सर्वोच्च सेनापति था और सर्वोच्च न्यायाधीश भी वही होता था। वह किसी को किसी भी पद पर नियुक्त कर सकता था, किसी की पदोन्नति कर सकता था तथा किसी को भी पदमुक्त कर सकता था। राजा का निर्णय अंतिम होता था।

2 **मन्त्रीपरिषद् :** हर्षवर्धन ने कुशल शासन-प्रबंधन के लिए एक सुसंगठित मन्त्रीपरिषद् का निर्माण किया था। इस समय योग्य और उत्कृष्ट लोगों को ही मन्त्रीपद पर नियुक्त किया जाता था। इन मन्त्रियों में सैनिक गुण होना भी आवश्यक था क्योंकि हर्ष के समय किसी भी मन्त्री को सैनिक-अभियान के समय सेना का नेतृत्व करने के लिए कहा जा सकता था।

प्रमुख मन्त्री

- **प्रधानमन्त्री** — राजा का प्रमुख सलाहकार
- **महासंधिविग्रहाधिकृत** — युद्ध व शांति मन्त्री
- **महाबलाधिकृत** — सेनाध्यक्ष
- **महाप्रतिहार** — महल का सुरक्षा मन्त्री
- **अष्टपटालिक** — लेखा अधिकारी

- **परमभट्टारक** - **सबसे बड़ा शासक**
- **सकलोत्तरपथनाथ** - **सारे उत्तर क्षेत्र का स्वामी**

3 **प्रान्तीय शासन :** हर्ष ने अपने विशाल साम्राज्य को उचित ढंग से चलाने के लिए इसे अनेक शक्तियों (प्रांत) में बांट रखा था। ये शक्तियां सामंतों और महासामंतों में विभाजित थीं। ये वे लोग थे जिन्होंने हर्ष की अधीनता स्वीकार कर ली थी। अप्रत्यक्ष रूप में ये अपने-अपने प्रांत के मुखिया भी थे। इन्होंने भूपाल, कुमार, लोकपाल, नृपति व महाराजा जैसी उपाधियां धारण की थी। इनमें प्रमुख वल्लभी का ध्रुवसेन द्वितीय, कामरूप का भास्करवर्मन, मगध का पूर्ववर्मन व जालंधर के उदित आदि थे। इसके प्रत्यक्ष नियंत्रण के क्षेत्र 'भुक्ति' कहलाते थे। उसके मुखिया को उपारिक या कुमारमात्य कहा जाता था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

4

स्थानीय शासन : भुक्ति (प्रांतों) को विषयों में बांटा गया था जिनका नेतृत्व विषयपति या आयुक्त करता था। उसकी नियुक्ति स्वयं शासक करता था। विषय आगे पथक में विभाजित थे जिनकी स्थिति आज के तहसील स्तर के अधिकारी की मानी जाती थी। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी जिसका प्रधान महतर कहलाता था। कई स्थानों पर ग्रामिक भी कहा जाता था। उसकी सलाह के लिए पंचायत होती थी।

5

सैनिक-प्रबंध

- **अश्व सेना** – 1 लाख घुड़सवार
- **पैदल सेना**
- **रथ सेना**
- **हाथी सेना** – 60 हजार हाथी

- सैनिकों की संख्या – 6 लाख
- सेना का मुखिया – महाबलाधिकृत
- सेना का नेतृत्व करने वाला – कटुक कहलाता था

6

राजस्व व्यवस्था

आय : आय का मुख्य साधन भू-राजस्व था। यह कुल उपज का 1/6 भाग लिया जाता था। इसे 'भाग' या 'उद्रंग' कहा जाता था। प्रजा स्वेच्छा से राजा को जो उपहार देती थी वह 'बलि' कहलाता था। इसके अतिरिक्त चुंगी कर, बिक्री कर, वन कर आदि थे।

व्यय : हर्षवर्धन निम्नलिखित पांच तरह से अपनी आय वितरित करते थे जो इस प्रकार है :

1. **दान देना–** हर्षवर्धन एक दानवीर सम्राट था। उसने नालंदा विश्वविद्यालय को 200 गांव दान कर दिए थे। हर्षवर्धन ने धन के अतिरिक्त अपने वस्त्र आदि भी दान कर दिए थे।
2. **प्रजा हितकारी कार्य** – हर्षवर्धन अधिकतर आय प्रजा के कल्याणकारी कार्यों पर खर्च करता था। जैसे– चिकित्सालय बनवाना, विश्रामगृह बनवाना, सड़कें बनवाना, पुल-निर्माण, शिक्षा का प्रबंध, पानी का प्रबंध आदि में वह खर्च करता था।
3. **वेतन–** हर्षवर्धन अपनी आय का एक भाग कर्मचारियों को वेतन देने में खर्च करता था। हर्षवर्धन के शासन में एक सेनापति से लेकर साधारण सिपाही को अपने गुजारे के लिए पर्याप्त वेतन दिया जाता था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

4. **सेना पर खर्च–** हर्षवर्धन अपनी आय का एक बड़ा भाग सेना पर खर्च करता था। जिससे सेना के लिए अस्त्र–शस्त्र, कवच, कुंडल, घोड़े तथा हाथियों का प्रबंध किया जाता था।

5. **राज परिवार पर खर्च–** आय का एक भाग राज–परिवार पर खर्च किया जाता था। राज–परिवार की जरूरत की वस्तुएं तथा महल की मरम्मत आदि पर खर्च शामिल था।

7

न्यायिक व्यवस्था

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते हैं?

हर्ष के साम्राज्य में शासन का कार्य ईमानदारी से होता था परंतु इतनी अच्छी कानून व्यवस्था होते हुए भी मार्ग सुरक्षित नहीं थे। स्वयं ह्वेनसांग को चोर–डाकुओं का सामना करना पड़ा तथा दो बार उसे भी लूट लिया गया।

सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था

हमें हर्ष काल की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति के बारे में जानकारी तत्कालीन लेखन जैसे कि बाणभट्ट द्वारा व चीनी स्रोतों से मिलती है।

सामाजिक व्यवस्था

- **वर्ण व्यवस्था :** उस समय समाज में वर्ण व्यवस्था विद्यमान थी । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र

आदि। संभवतः उपजातियों को मिश्रित जाति कहा जाता था। ब्राह्मण समाज को शिक्षा देते थे तथा पवित्र कार्य पूरे करवाते थे। ये प्रशासनिक कार्यों में भी राजा को सलाह देते रहते थे। क्षत्रिय रक्षा का कार्य करते थे एवं सैनिक के रूप में कार्यभार इन्हीं के कन्धों पर था। वैश्य व्यापारिक कार्यों में संलग्न थे एवं समाज की आवश्यकता की पूर्ति इन्हीं के द्वारा पूर्ण की जाती थी। शूद्रों का कार्य सेवा करना था। जैसे कृषि करना, पशु पालन, घर बनाना लकड़ी एवं धातु के औजार बनाना आदि।

- **विवाह :** अंतर्जातीय विवाह उस समय मान्य थे। अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह को भी धीरे-धीरे स्वीकृति मिल जाती थी। उत्तरी व दक्षिणी भारत के विवाह नियमों में प्रायः भिन्नता थी। इसी तरह उत्तर भारत में अलग-अलग जातियों के विवाह के रीति-रिवाज में भी भिन्नता थी। समाज में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। उच्च वर्णों में स्त्रियां पुनर्विवाह नहीं करती थी, किंतु शूद्रों व वैश्यों में पुनर्विवाह होता था। सतीप्रथा प्रचलित थी। विधवा स्त्री श्वेत वस्त्र धारण करती थी।
- **उच्च नैतिक जीवन :** ह्वेनसांग ने भारतीयों को उच्च प्रतिष्ठावान बताया। वे पाप पुण्य का सदैव ध्यान रखते थे। यहां ईमानदारी एवं कर्तव्य निष्ठा सदैव बनी रहती थी। अतिथि को भगवान का दर्जा दिया जाता था।
- **आवास :** नगर साधारण एवं निश्चित योजना के अनुसार बनते थे और उनके चारों ओर सुरक्षा के लिए परकोटे बनाये जाते थे। नगरों में कई मंजिलों के भवन होते थे। घरों के निर्माण में पत्थरों तथा पकाई गई ईटों का प्रयोग होता था। गांव का आकार काफी छोटा था। मकान सामान्यता कच्चे होते थे। जिनमें कच्ची मिट्टी व लकड़ी का प्रयोग किया जाता था।
- **खान पान :** लोग सादा भोजन करते थे। गेहूं तथा चावल जनसाधारण का भोजन था। घी, दूध, दही, गुड़-शक्कर सरसों का तेल आदि भोजन के मुख्य अंग थे। प्याज और लहसुन का प्रयोग नहीं किया जाता था। कुछ लोग मांसाहारी भी होते थे। दालें, विभिन्न तरह की सब्जियां एवं फलों का प्रयोग किया जाता था।

आर्थिक व्यवस्था

सभी स्रोतों से यह स्पष्ट है कि देश की आर्थिक स्थिति उस समय अत्यधिक उन्नत एवं मजबूत थी। कृषि लोगों की आजीविका का मुख्य आधार था। ह्वेनसांग लिखता है कि भोजन और फलों का उत्पादन भरपूर मात्रा में किया जाता था। हर्षचरित के अनुसार, चावल, गेहूं, ईख आदि के साथ सेब और अंगूर भी उगाए जाते थे। सिंचाई की अच्छी व्यवस्था थी। हर्षचरित में सिंचाई के साधन के रूप में तुलायंत्र (जल पंप) का उल्लेख है। कृषि से अलग, वाणिज्य व्यवसाय और व्यापार भी प्रगति पर थे। कुछ शहर अपने व्यापार के कारण काफी प्रसिद्ध और समृद्ध हो गए थेः जैसे थानेसर, उज्जैनी और कन्नौज। देश में आंतरिक और बाहरी दोनों तरह का व्यापार होता था। व्यापार काफी समृद्ध था। कपड़ा उद्योग, चमड़ा उद्योग, बर्तन उद्योग एवं औजार उद्योग प्रमुख उद्योग थे।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

हर्षवर्धन का चरित्र

हर्षवर्धन के महान चरित्र, सफलताओं व उपलब्धियों का वर्णन बाणभट्ट द्वारा रचित 'हर्षचरित' में मिलता है जो कि निम्नलिखित है :

1. कुशल शासन-प्रबंधक एवं महान सेनापति : हर्षवर्धन केवल एक विजेता ही नहीं अपितु एक कुशल शासन-प्रबंधक भी था। उसने अपने शासन को प्रांत, जिलों व गांवों में बांटा हुआ था। वह बहुत दयालु शासक था। वह प्रजा का हाल जानने के लिए राज्य का भ्रमण करता था। उसने एक विशाल सेना का गठन कर रखा था। इसी सेना के बल पर हर्ष ने उत्तर भारत के बहुत से राजाओं को हराकर उनसे अपनी अधीनता स्वीकार करवाई। हर्ष ने अनेक सफलताएं प्राप्त की जिनके आधार पर उसकी तुलना समुद्रगुप्त से भी की जाती है।

2. प्रजा-प्रेमी : हर्षवर्धन अपनी जनता से बहुत प्रेम करता था। उसने अशोक की भांति अपना समस्त जीवन प्रजा कल्याण के लिए समर्पित कर दिया था। वह सदैव दीन-दुखियों की सहायता के लिए तत्पर रहता था। वह अपने राजकोष से एक निश्चित मात्रा में धन, प्रजा-कल्याण के लिए चिकित्सालयों, विद्यालयों, भवनों, सड़कों इत्यादि पर खर्च करता था।

3. परिवार प्रेमी : हर्ष प्रजा प्रेमी तो था ही साथ ही उसका अपने परिवार के प्रति भी बहुत लगाव था। जब उसके भाई राज्यवर्धन की धोखे से हत्या कर दी गई तो वह न केवल अपने भाई की हत्या का बदला लेता है बल्कि अपनी बहन राज्यश्री को भी ढूंढ निकालता है। इससे अनूठा परिवार-प्रेम किसी राजा में देखने को नहीं मिलता है।

4. महान दानी : हर्ष अपनी दानशीलता के लिए पूरे विश्व में प्रसिद्ध था। उसने दान देने के लिए एक कोष का गठन कर रखा था जिससे वह प्रत्येक 5 वर्ष बाद प्रयाग सम्मेलन में भरसक दान करता था।

क्या आप जानते हैं?

ह्वेनसांग के अनुसार, "643 ई. में प्रयाग की सभा में हर्ष ने अपना सब कुछ दान में दे दिया था। यहां तक की उसने अपने वस्त्र भी दान कर दिए थे तथा अपनी बहन राज्यश्री से वस्त्र मांगकर धारण किए थे।"

5. धार्मिक सहनशील : हर्ष एक सहनशील राजा थे। उसमें धार्मिक कट्टरता नाम मात्र भी नहीं थी। ह्वेनसांग के अनुसार, हर्ष आरम्भ में शैव मत का अनुयायी था लेकिन बाद में वह बौद्ध धर्म को भी मानने लगा। प्रयाग सभा में उसने पहले दिन बुद्ध की, दूसरे दिन सूर्य की, तीसरे दिन शिव की उपासना की। इस सभा में उसने 500 ब्राह्मणों को भोजन करवाया वस्त्र आदि का दान भी दिया। उसके राज्य में हिन्दू, बौद्ध, जैन, सभी धर्मों के लोग रहते थे।

भरसक - शक्ति या सामर्थ्य के अनुसार या जहाँ तक हो सके

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

6. बौद्ध धर्म का प्रचारक : हर्ष अशोक की भांति बौद्ध धर्म का प्रचारक था। उसने बौद्ध धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए अनेक कार्य किए। उसने अशोक की तरह अहिंसा का पालन किया तथा पशु-वध व शिकार करने पर भी प्रतिबंध लगा दिया। उसने बौद्ध मठों व विहारों का निर्माण करवाया। वह प्रत्येक वर्ष बौद्ध सभा का आयोजन करता था। उसने धर्म प्रचार के लिए विदेशों में राजदूत भेजे। हर्ष ने 200 करमुक्त गांव नालंदा विश्वविद्यालय को दिए क्योंकि उसमें बौद्ध धर्म की शिक्षा दी जाती थी। हर्ष ने बौद्ध धर्म के लिए इतने कार्य किए कि उनका नाम अशोक और कनिष्क के समान ही बौद्ध धर्म के इतिहास में अमर हो गया।

7. विद्वानों को संरक्षण : विद्वानों को हर्ष का विशेष संरक्षण प्राप्त था। हर्ष ने अपने दरबार में अनेक साहित्यिक और बौद्ध विद्वानों को स्थान दे रखा था। उसने इन विद्वानों के लिए अनेक मठ एवं विहार बनवाए। उसके दरबार में बाण, दिवाकर, मयूर, जयसेन, एवं भास जैसे विद्वान रहते थे।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

8. नाटककार सम्राट, कला एवं साहित्य को संरक्षण : हर्ष, कला और साहित्य प्रेमी सम्राट था। वह स्वयं एक नाटककार एवं विद्वान शासक था। उसने तीन नाटकों 'रत्नावली', 'नागानंद' व 'प्रियदर्शिका' की रचना की। बाणभट्ट ने उसे काव्य रचना में दक्ष बताया है। हर्ष की तुलना कालिदास से की गई है। उसने बाणभट्ट जैसे महान साहित्यकार को संरक्षण दिया, जिसने 'हर्षचरित' एवं 'कादम्बरी' जैसे ग्रन्थों की रचना की। उसके दरबार का दूसरा अनमोल मोती जयसेन थे जिसने योगशास्त्र, वेद ज्योतिष, भूगोल, गणित व चिकित्सा आदि विषयों पर लिखा। हर्ष ने जयसेन को 80 गांवों की आय दान में दे दी थी परन्तु उसने इसे स्वीकार नहीं किया। मयूर व मातंग जैसे विद्वान भी उसके दरबार में रहे। मयूर ने 'सूर्यशतक' की रचना की।

चित्र-1.3

9. शिक्षा का संरक्षक : शिक्षा को हर्ष का विशेष संरक्षण प्राप्त था। हर्ष के समय में नालंदा विश्वविद्यालय सर्वाधिक प्रसिद्ध था। हर्ष ने 200 करमुक्त गांव नालंदा विश्वविद्यालय को खर्च चलाने के लिए दान किए थे। वह अपने राज्य की आय का एक चौथाई भाग विद्वानों में पुरस्कार के रूप में बांटता था।

ज्ञात करें

- अपने विद्यालय में छात्रों के लिए उपलब्ध सुविधाओं के बारे में अपने हेडमास्टर/ आचार्य से पता करें।
- आपके विद्यालय में दान की गई वस्तुओं की सूची बनाएं।

ह्वेनसांग का हर्ष के बारे में विवरण:

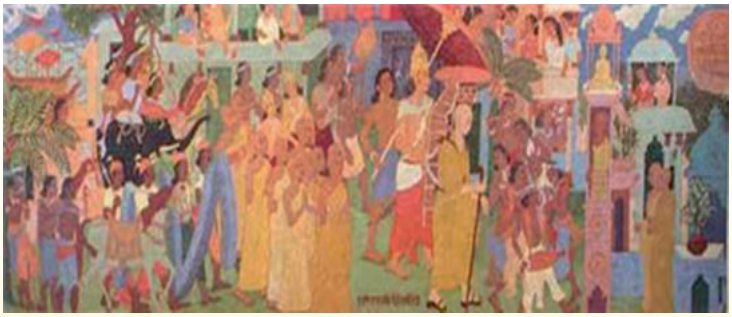

चित्र-1.4 ह्वेनसांग (लोक सभा गैलरी से साभार)

ह्वेनसांग एक चीनी यात्री था। उसे 'यात्रियों का राजकुमार' कहा जाता है। वह हर्षवर्धन के शासनकाल में भारत आया तथा लगभग आठ वर्षों तक हर्ष के दरबार में रहा। वह 629 ई. में भारत यात्रा के लिए चीन से चला। वह बौद्ध धर्म के तीर्थस्थानों व बौद्ध धर्म के बारे में जानने के लिए भारत आया था। ताशकंद, समरकंद तथा बल्ख से होता हुआ वह भारत के गांधार प्रदेश में पंहुचा। यहां से चलकर उसने पंजाब, कपिलवस्तु, गया, सारनाथ, श्रावस्ती, कुशीनगर आदि स्थानों की यात्रा की। उसने दो साल तक नालंदा विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की।

दक्षिण भारत में घूमने के बाद वह 644 ई. में चीन के लिए प्रस्थान कर गया। चीन पहुंचकर उसने अपनी भारत-यात्रा का वृतान्त लिखा जिसका शीर्षक था- सी-यू-की (पश्चिमी देश का वृतान्त)। यह ग्रंथ हर्ष कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालता है।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

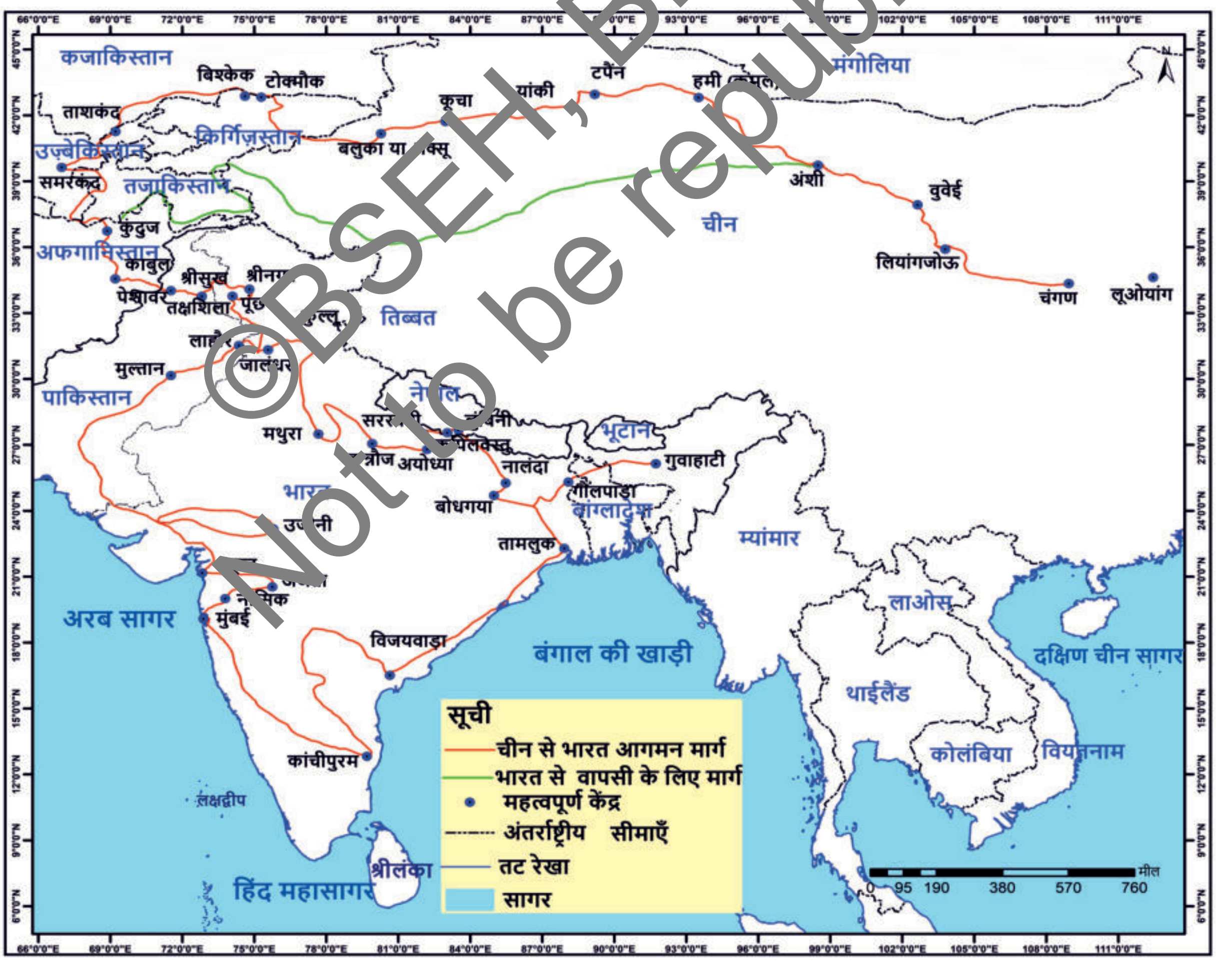

मानचित्र-1.2 - ह्वेनसांग का मार्ग

हर्ष एक विजेता ही नहीं बल्कि एक कुशल शासन प्रबंधक, दयालु, दानवीर, साहित्य का संरक्षक तथा उच्चकोटि का विद्वान सम्राट था। हर्ष प्राचीन काल के भारतीय इतिहास का महान सम्राट तथा महान साम्राज्य निर्माता था। उसने सम्राट अशोक की भांति सम्पूर्ण शक्ति को जन सेवा में लगा दिया। भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति में योगदान देकर राष्ट्र को अग्रसर किया। हर्ष के प्रत्येक कार्य में समाज को उन्नत बनाने का ध्येय विद्यमान होता था।

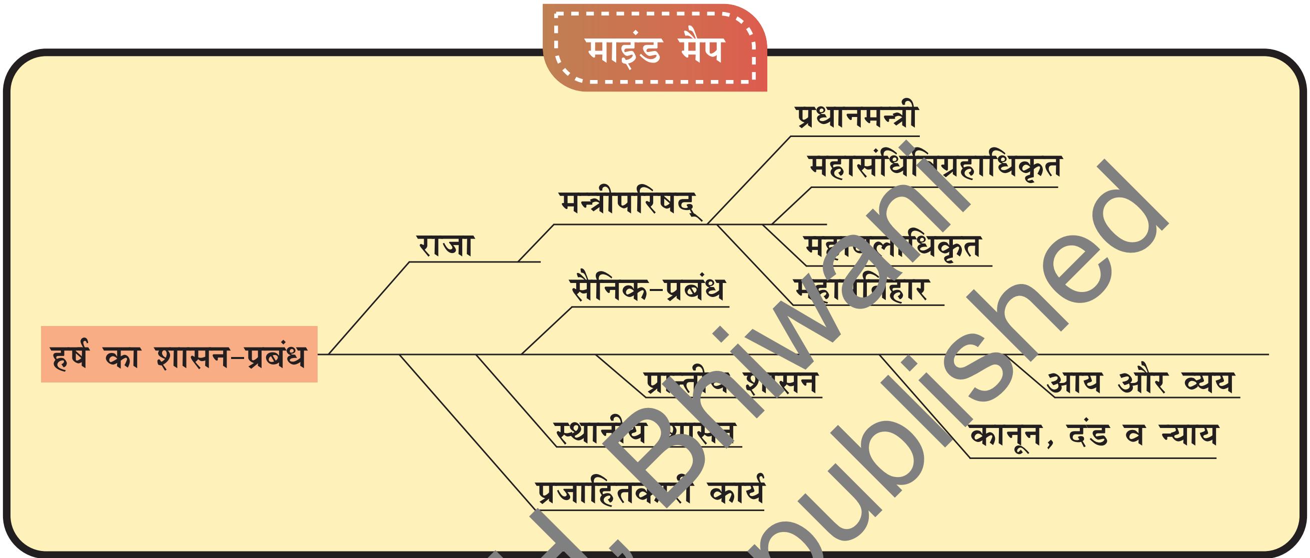

हर्षवर्धन एक नजर में

नाम	हर्षवर्धन
जीवन काल	590 ई. - 647 ई.
माता	यशोमति
पिता	प्रभाकरवर्धन
वंश	पुष्यभूति
राजधानी	थानेसर (कुरुक्षेत्र), कन्नौज
शासन काल	606 ई. - 647 ई.
धर्म	हिन्दू और बौद्ध

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ जानें, कितना सीखा

सही उत्तर छांटें :

1. गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात किस वंश की स्थापना हुई?
   क) चालुक्य ख) मौर्य ग) पुष्यभूति घ) राजपूत

2. राजा हर्षवर्धन के दरबारी कवि कौन थे?
   क) तुलसीदास ख) बाणभट्ट ग) सूरदास घ) रसखान

3. संस्कृत नाटक 'नागानंद' की रचना किस शासक द्वारा की गई थी?
   क) प्रभाकरवर्धन ख) हर्षवर्धन ग) राज्यवर्धन घ) नरवर्धन

4. नर्मदा नदी पर सम्राट हर्ष के दक्षिणवर्ती अग्रगमन को रोका –
   क) पुलकेशिन–। ने ख) पुलकेशिन–।। ने
   ग) विक्रमादित्य–। ने घ) विक्रमादित्य–।। ने

5. बंगाल का कौन-सा शासक हर्ष का समकालीन था?
   क) शशांक ख) ध्रुवसेन ग) पुलकेशिन–। घ) भास्करवर्मा

रिक्त स्थान की पूर्ति करें :

1. पुष्यभूति ने थानेसर में .... नामक वंश की स्थापना की।
2. प्रभाकरवर्धन ने अपनी पुत्री का विवाह कन्नौज के शक्तिशाली राजा .... से किया।
3. हर्ष ने .... नामक बौद्ध संन्यासी की सहायता से अपनी बहन को खोज लिया।
4. हर्षवर्धन का जन्म .... ई. में हुआ ।
5. बाणभट्ट ने .... एवं .... जैसे ग्रन्थों की रचना की।

उचित मिलान करो :

1. कादंबरी	क) स्वेच्छा से दिया गया उपहार
2. नालंदा विश्वविद्यालय	ख) भूमि कर
3. भाग	ग) कुमारगुप्त
4. बलि	घ) सेना का नेतृत्व करने वाला
5. कटुक	ड़) बाणभट्ट

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

निम्नलिखित कथनों में सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाओ :

1. प्रभाकरवर्धन राजा आदित्यवर्धन तथा रानी महासेन गुप्त देवी का पुत्र था। ( )
2. गौड़ अथवा कर्नाटक का राजा शशांक हर्ष का सबसे बड़ा शत्रु था। ( )
3. महासंधि विग्रहाधिकृत हर्ष का युद्ध व शांति मंत्री था। ( )
4. नालंदा विश्वविद्यालय में 10000 विद्यार्थी तथा 5000 शिक्षक कार्यरत थे। ( )
5. ह्वेनसांग ने नालंदा विश्वविद्यालय में 5 साल तक शिक्षा ग्रहण की। ( )

लघु प्रश्न :

1. हर्षचरित् क्या है और यह किसने लिखा?
2. हर्षवर्धन के शासन काल के बारे में जानकारी देने वाले स्रोत कौन से हैं?
3. गौड़ राज्य का अधिकरण करने के लिए हर्षवर्धन की क्या मंशा थी?
4. राज्याभिषेक के बाद राजा हर्षवर्धन ने सबसे पहले क्या कार्य किया? इस कार्य में उनकी सहायता किसने की?

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आइए विचार करें :

1. "हर्षवर्धन एक विशाल साम्राज्य बनाने में सफल रहा।" इस कथन को तर्क सहित सिद्ध करें।
2. हर्षवर्धन साम्राज्य में आय और व्यय के स्रोत क्या थे?
3. शिक्षा के क्षेत्र में हर्षवर्धन का क्या योगदान रहा? उदाहरण सहित पुष्टि करें।
4. "राजा हर्षवर्धन विद्वानों, कला और साहित्य के महान संरक्षक थे।" आप इस कथन से सहमत हैं, तर्क सहित अपने उत्तर की पुष्टि करें।
5. हर्षवर्धन की प्रमुख विजय कौन सी हैं? किन्हीं दो का वर्णन करें।
6. हर्ष के साम्राज्य में सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाएं कौन सी थीं? विश्लेषण करें।

आओ करके देखें

1. ह्वेनसांग के यात्रा विवरण में भारत के जिन स्थानों के बारे में बताया गया है वे वर्तमान में किन राज्यों में स्थित हैं उनकी एक सूची बनाकर मानचित्र पर अंकित करें।

अध्याय - 2

दक्षिण के राज्य : चालुक्य, पल्लव एवं चोल

आओ जानें

दक्षिण भारत के राजवंश :

- चालुक्य राजवंश – बादामी, वेंगी, कल्याणी
- पल्लव राजवंश
- चोल राजवंश

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

चालुक्य

विंध्याचल पर्वत से लेकर कन्याकुमारी तक का विशाल प्रदेश दक्षिण प्रदेश या दक्षिणापथ कहा जाता है। सातवीं से तेहरवीं शताब्दी तक यहां अनेक राजवंश- चालुक्य, पल्लव, राष्ट्रकूट, चोल, पांड्य आदि थे। दक्षिण के इन राज्यों ने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के उदय होने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस अध्याय में हम चालुक्य, पल्लव एवं चोल शासकों का वर्णन करेंगे। चालुक्य वंश के अभिलेखों के आधार पर इस वंश की तीन शाखाएं मानी जाती हैं। इन्हें सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी बताया गया है। ये तीन शाखाएं बादामी या वातापी के चालुक्य, पूर्वी या वेंगी के चालुक्य और कल्याणी के चालुक्य के नाम से थी।

चालुक्य वंश की मूल शाखा बादामी अथवा वातापी के चालुक्यों की थी। बादामी के चालुक्यों को प्रारंभिक पश्चिमी चालुक्य के नाम से भी पुकारा जाता है। उनकी एक शाखा वेंगी अथवा पिष्ठपुर के पूर्वी चालुक्य थे, जिन्होंने सातवीं सदी के प्रारंभ में अपने स्वतंत्र राज्य को स्थापित किया। इनकी एक अन्य शाखा कल्याणी के चालुक्य थे, जिन्हें बाद में पश्चिमी चालुक्य भी पुकारा गया और जिन्होंने दसवीं सदी के उत्तरार्ध में राष्ट्रकूट शासकों से अपने वंश के राज्य को पुनः छीन लिया और एक बार फिर चालुक्यों की कीर्ति को स्थापित किया। संभवतः ये चालुक्य शुरुआत में अयोध्या में रहते थे और बाद में कुछ कारणों से दक्षिण में चले गये।

बादामी के चालुक्य (वातापी के चालुक्य)

बादामी के चालुक्यों ने छठी सदी के मध्य काल से लेकर आठवीं सदी के मध्य काल तक के प्रायः 200 वर्षों के समय में दक्षिणापथ में एक विस्तृत साम्राज्य का निर्माण किया। डा. डी. सी. सरकार ने उनको 'स्थानीय कन्नड़ परिवार' का माना है जिनको बाद में क्षत्रियों में स्थान प्रदान किया गया। उन्होंने अपने वंश के इस नाम को चल्क, चलिक अथवा चलुक नाम के किसी प्राचीन व्यक्ति से प्राप्त किया और चालुक्य कहलाने लगे।

इस वंश का सबसे पहला शासक जयसिंह था। उसके पश्चात् उसका पुत्र रणराग सिंहासन पर बैठा। रणराग का पुत्र पुलकेशिन प्रथम (535-566 ई.) हुआ जिसने वातापी के किले का निर्माण किया और उसे अपनी राजधानी बनाया। उसका उत्तराधिकारी कीर्तिवर्मा प्रथम था जिसने कदम्ब, कोंकण, नल आदि राजवंशों के राजाओं को परास्त करके अपने राज्य का विस्तार किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके भाई मंगलेश ने गद्दी के उत्तराधिकारी पुलकेशिन द्वितीय का संरक्षक बनकर शासन किया। उसके पश्चात् पुलकेशिन द्वितीय शासक बना।

क्या आप जानते हैं?

एहोल कर्नाटक के बीजापुर में स्थित, बादामी के निकट, बहुत प्राचीन स्थान है। यहां से पुलकेशिन द्वितीय का 634 ई. का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। इसका रचयिता जैन कवि रविकीर्ति था। इस अभिलेख में पुलकेशिन द्वितीय की विजयों का वर्णन है।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पुलकेशिन द्वितीय (610-642 ई.) : पुलकेशिन द्वितीय ने अपने चाचा मंगलेश से युद्ध करके सिंहासन प्राप्त किया क्योंकि मंगलेश उसके वयस्क हो जाने के पश्चात् भी उसे सिंहासन देने के लिए तैयार नहीं हुआ था। इस कारण पुलकेशिन के शासन का प्रारंभ संघर्ष और कठिनाइयों से आरंभ हुआ परंतु उसने अपनी योग्यता से चालुक्यों को श्रेष्ठता प्रदान की।

पुलकेशिन द्वितीय ने दक्षिण में कदंबों, कोंकण के मौर्यों एवं उत्तर के गुर्जरों को परास्त किया। उसने उत्तर भारत के महान सम्राट हर्षवर्धन को हराया। पूर्व में कलिंगों को परास्त किया और पिष्ठपुर को जीतकर अपने भाई विष्णुवर्धन को राज्यपाल बनाया।

वेंगी के चालुक्य (पूर्वी चालुक्य)

पुलकेशिन द्वितीय ने अपने भाई विष्णुवर्धन को पिष्ठपुर का राज्यपाल बनाया था परंतु उसने बहुत शीघ्र ही अपने को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। विष्णुवर्धन ने मकरध्वज, विषमसिद्धि नामक उपाधियां धारण की। उसके बाद कई शासक जैसे: जयसिंह प्रथम, इन्द्र वर्मन आदि हुए। पूर्वी चालुक्यों की पहली राजधानी पिष्ठपुर थी। उसके बाद वेंगी बनी और अंत में राजमहेंद्री बनी।

विष्णुवर्धन प्रथम के बाद (633-848 ई.) अनेक राजाओं ने वेंगी वंश को संभाला। विजयादित्य द्वितीय और विजयादित्य तृतीय वेंगी वंश के सबसे अधिक शक्तिशाली शासक हुए। जिन्होंने पल्लव, पाण्डय, पश्चिमी गंग, दक्षिण कौशल, कलिंग, कलचुरी और राष्ट्रकूट शासकों को परास्त किया।

विजयादित्य तृतीय के पश्चात् चालुक्य भीम (892-921 ई.) शासक बना। उसका संपूर्ण शासनकाल राष्ट्रकूट शासक कृष्ण द्वितीय से संघर्ष करते हुए व्यतीत हुआ। वह कई बार परास्त भी हुआ परंतु इस संघर्ष ने चालुक्यों की शक्ति को दुर्बल कर दिया। राजवंश के विभिन्न व्यक्तियों ने बाहरी शक्तियों की सहायता लेकर सिंहासन पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। 1063 ई. तक वेंगी के अनेक शासकों ने शासन किया। लेकिन चालुक्यों की शक्ति निरन्तर कमजोर होती गई। अन्त में चोल शासक कुलोतुंग ने वेंगी के शासक विजयादित्य सप्तम को पराजित कर इस वंश के साम्राज्य को चोल साम्राज्य में मिला लिया।

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

कल्याणी के चालुक्य (पश्चिम चालुक्य)

कल्याणी के चालुक्य शुरुआत में राष्ट्रकूट-शासकों के अधीन थे। अंतिम राष्ट्रकूट शासक कर्क के समय में चालुक्य तैल द्वितीय ने विद्रोह किया और कर्क को परास्त करके राष्ट्रकूटों के राज्य पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार तैल द्वितीय ने कल्याणी के चालुक्यों के साम्राज्य का निर्माण राष्ट्रकूट साम्राज्य के अवशेषों पर किया। अपने साम्राज्य का विस्तार इन्होंने कल्याणी से शुरू किया।

क्या आप जानते हैं?
तैल द्वितीय ने अपनी राजधानी मान्यखेत बनाई, जो पहले राष्ट्रकूट वंश की राजधानी थी।

तैल द्वितीय (993-997 ई.) एक महान योद्धा हुआ। उसने चेदी, उड़ीसा, कुंतल, गुजरात के चालुक्य, मालवा के शासक परमार मुंज और चोल शासक उत्तम को परास्त किया। उसने लाट और पांचाल प्रदेशों को भी अपने अधीन किया। इस प्रकार विभिन्न युद्धों में भाग लेकर उसने चालुक्यों के एक बड़े साम्राज्य का निर्माण किया। उसने स्वयं को बादामी के महान चालुक्य शासकों का वंशज बताया था। उसने 'महाराजाधिराज' 'परमेश्वर' एवं 'चक्रवर्ती' नामक उपाधियां धारण की।

तैल के उत्तराधिकारी सत्याश्रय (997-1008 ई.), विक्रमादित्य पंचम (1008-1014 ई.), अय्यन द्वितीय (1014-1015 ई.) और जयसिंह द्वितीय (1015-1043 ई.) इस वंश के अन्य शासक रहे।

इनके पश्चात् सोमेश्वर प्रथम (1043-1068 ई.) शासक बना। उसने कोंकण को जीता तथा मालवा, गुजरात, दक्षिण कौशल तथा केरल पर आक्रमण किए। कलचुरी शासक राजाधिराज ने सोमेश्वर की राजधानी कल्याणी को लूटने में सफलता पाई परंतु वह संघर्ष करता रहा और अंत में एक युद्ध में राजाधिराज चोल मारा गया। उसके भाई राजेंद्र चोल द्वितीय ने सोमेश्वर के आक्रमणों के विरुद्ध चोल राज्य की रक्षा करने में सफलता पाई और अंत में (1063 ई.) में सोमेश्वर की पराजय हुई।

सोमेश्वर प्रथम के पश्चात् सोमेश्वर द्वितीय (1068-1076 ई.) और उसके पश्चात् विक्रमादित्य षष्ठ (1076-1126 ई.) शासक बना। विक्रमादित्य ने अनेक राजाओं से युद्ध करके अपने राज्य का विस्तार किया। उसका राज्य उत्तर में नर्मदा नदी और दक्षिण में कड़प्पा तथा मैसूर तक फैला हुआ था।

विक्रमादित्य के पश्चात् सोमेश्वर तृतीय (1126-1138 ई.) और जगदेव मल्ल (1138-1151 ई.) तैल शासक हुए। तैल के समय में चालुक्य राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इस वंश का अन्तिम शासक सोमेश्वर चतुर्थ था। अन्त में 1190 ई. में यादव एवं होयसल शासकों ने इस साम्राज्य का अन्त कर दिया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

निम्नलिखित तालिका की पूर्ति करें

चालुक्य वंशावली

बादामी	वेंगी	कल्याणी
1. 2. 3. • • •		

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

चालुक्य शासकों की उपलब्धियां

व्यक्तिगत गतिविधि

अपने विषयाचार्य की सहायता से चालुक्यों द्वारा शासित वर्तमान स्थानों को मानचित्र में अंकित करें।

विशाल साम्राज्य की स्थापना : चालुक्य वंश के शासकों ने दक्षिणापथ में एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। इस वंश के शासकों में अनेक महान योद्धा हुए और उन्होंने उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के अनेक शासकों को परास्त करने में सफलता पाई। पुलकेशिन द्वितीय और कुछ अन्य शासकों ने अश्वमेध यज्ञ भी किये। चालुक्य-शासकों का राज्य आर्थिक दृष्टि से संपन्न था और उसके अंतर्गत कई अच्छे बंदरगाह थे जिनसे विदेशी व्यापार को बढ़ावा मिला।

धार्मिक सहनशीलता : धार्मिक दृष्टि से चालुक्य-शासक हिंदू धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने प्राचीन वैदिक धर्म के अनुसार अनेक यज्ञ किए और उनके समय में कई धार्मिक ग्रंथों की रचना हुई। उन्होंने हिंदू धर्म को संरक्षण देकर विष्णु तथा शिव के मंदिरों का निर्माण कराया। लेकिन अन्य धर्मों के प्रति उनका व्यवहार सहनशीलता का था। चालुक्य शासकों ने जैन धर्म व बौद्ध धर्म को भी सहायता प्रदान की। इसके अतिरिक्त मुंबई के थाना जिले में पारसियों को बसने की आज्ञा दी। चालुक्य राज्य में 100 से अधिक बौद्ध विहार थे जिनमें 5000 भिक्षु निवास करते थे।

चित्र-2.1 पुलकेशिन द्वितीय के दरबार में पर्शिया के राजदूत के स्वागत का दृश्य (लोक सभा गैलरी से साभार)

कला एवं स्थापत्य कला का विकास : सबसे अधिक वास्तुकला की प्रगति इस समय में हुई विशेषकर चित्रकला व ललित कला। अजंता के भित्ति चित्रों में से कुछ का निर्माण चालुक्य शासकों के समय में हुआ। चालुक्यों ने अपनी पृथक वेसर-शैली का विकास किया।

चित्र-2.2 गुफा मंदिर, बादामी

चित्र-2.3 शिव मंदिर, पट्टदूकल

वास्तु कला के क्षेत्र में चालुक्यों के समय की एक मुख्य विशेषता पहाड़ों और चट्टानों को काटकर बड़े-बड़े मंदिरों का निर्माण था। उनके समय में विभिन्न हिंदू गुफा मंदिरों और चैत्य हालों का निर्माण किया गया। सम्राट मंगलेश ने वातापी में विष्णु के गुफा मंदिर का निर्माण कराया। बादामी, ऐलोरा, ऐलीफंटा, औरंगाबाद, अंजता आदि में पर्वतों को काटकर सुन्दर मन्दिरों का निर्माण किया गया।

शिक्षा व साहित्य क्षेत्र में प्रगति : चालुक्य शासक शिक्षा एवं साहित्य के महान प्रेमी थे। उन्होंने विभिन्न स्थानों पर विद्यालय एवं महाविद्यालयों का निर्माण करवाया तथा साहित्यकारों एवं लेखकों को अपने दरबार में संरक्षण दिया। चालुक्यों ने संस्कृत भाषा को अत्यधिक महत्व दिया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

उस समय अवलंक ने 'अष्टशती', विज्ञानेश्वर ने 'मिताक्षरा' पुस्तक लिखी। कन्नड़ भाषा के ग्रंथ 'कविराजमार्ग' शांतिपुराण, गदायुद्ध आदि भी इस युग में लिखे गये है। विल्हण का 'विक्रमांकदेवचरित' व सोमदेव सूरी को 'वाक्यामृत' इस युग में लिखे गए प्रमुख ग्रन्थ हैं।

आर्थिक जीवन : लोगों का आर्थिक जीवन खुशहाल था। मुख्य व्यवसाय कृषि ही था। भू-राजस्व भूमि की उपजाऊ शक्ति पर आधारित था। उस समय गर्म मसालों एवं बहुमूल्य लकड़ी का व्यापार भी किया जाता था।

प्रशासनिक व्यवस्था : चालुक्यों की प्रशासनिक व्यवस्था उच्च कोटि की थी। शासक प्रशासनिक इकाई का केन्द्र बिन्दु था तथा उनके पास असीमित शक्तियां थी। वे अपनी शक्तियों का प्रयोग जनता की भलाई के लिए करते थे।

साम्राज्य को प्रशासनिक सुविधानुसार इस प्रकार बांटा गया था :

प्रशासनिक इकाई	प्रशासनिक अधिकारी
साम्राज्य	राजा
राष्ट्र (प्रान्त)	राष्ट्रपति
देश (जिला)	देशाधिपति
नगर (शहर)	पतनस्वामी
ग्राम (गांव)	गामुंड

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पल्लव वंश

भारत के सुदूर दक्षिण में पल्लव राजवंश का उत्थान हुआ। सुदूर दक्षिण के इस भाग को तमिल-प्रदेश भी पुकारा गया है। सातवाहन वंश के पतन के बाद उनके राज्य के दक्षिण-पूर्वी भाग पर पल्लव वंश ने अपना अधिकार कर लिया और कांची को अपनी राजधानी बनाया।

पल्लव वंश के शासकों का ज्ञान हमें प्राकृत तथा संस्कृत ताम्रपत्रों व समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति से होता है। पल्लव शासकों की उत्पत्ति का अनुमान तीसरी सदी से किया जाता है। शिवस्कंधवर्मा, विष्णुगोप आदि इनके आरंभिक शासक थे परंतु पल्लवों की महानता का काल छठी शताब्दी के अंतिम चरण में उनके शासक सिंहविष्णु के समय से आरंभ हुआ। इनके शासक इस प्रकार थे :

क्या आप जानते हैं?

तमिल शब्द 'तोंडेयर' को संस्कृत में पल्लव कहा गया है। इसी से यह वंश पल्लव वंश कहलाया।

विभिन्न पल्लव शासक

1. सिंहविष्णु (575-600 ई०) :

- सिंहविष्णु एक महान शासक था। उसने कावेरी से कृष्णा नदी तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया।
- सिंहविष्णु ने साहित्य और कला को संरक्षण दिया। संस्कृत का महान कवि भारवि उसके दरबार में था और उस के समय में महाबलीपुरम नगर कला का केंद्र स्थान बन गया था। उसने 'अवनिसिंह' की उपाधि धारण की। उसने चोलो को पराजित कर चोलमण्डलम पर अधिकार किया।

2. महेंद्रवर्मन प्रथम (600-630 ई.) :

- सिंहविष्णु के पश्चात् उसका पुत्र महेंद्रवर्मन शासक बना। सिंहविष्णु के पुत्र महेंद्र के समय में पल्लवों और चालुक्यों का संघर्ष आरंभ हुआ क्योंकि दोनों ही दक्षिण भारत में अपनी-अपनी शक्ति के विस्तार के लिए प्रयासरत थे।
- पल्लवों ने कदम्बों के साथ मिलकर चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय की शक्ति के विस्तार को रोकने का प्रयत्न किया। इस कारण पुलकेशिन ने पल्लव राज्य पर आक्रमण किया। इस आक्रमण से पल्लव राजधानी कांची की सुरक्षा तो हो गई परंतु पुलकेशिन ने उससे उसके उत्तरी प्रांत वेंगी को छीन लिया जहां उसने अपने भाई विष्णुवर्धन को राज्यपाल नियुक्त किया जिसने पूर्वी चालुक्यों के राज्य की स्थापना की।

महेंद्रवर्मन प्रथम

- साहित्य एवं ललित-कला का प्रेमी
- कवि और गायक
- 'मत्तविलास प्रहसन' नामक संस्कृत ग्रंथ लिखा
- त्रिचनापल्ली, चिंगिलपुट और अर्काट में बहुत से मंदिरों की स्थापना की (जो पहाड़ी की चट्टानों को काटकर बनाए गए थे)
- एक झील का निर्माण करवाया।
- आरंभ में जैन था परंतु बाद में शैव बन गया

नरसिंह वर्मन प्रथम (630-668 ई.) :

- महेंद्रवर्मन का पुत्र नरसिंह वर्मन एक महान शासक हुआ। उसके समय में भी पल्लवों का बादामी के चालुक्यों से संघर्ष हुआ। चालुक्य शासन पुलकेशिन द्वितीय ने उसके राज्य पर आक्रमण किया और 642 ई. में उसकी राजधानी वातापी पर अधिकार कर लिया। इन्हीं युद्धों में पुलकेशिन द्वितीय मारा गया और पल्लवों ने चालुक्य राज्य के दक्षिणी भाग पर अधिकार कर लिया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

- नरसिंह वर्मन ने चालुक्यों की शक्ति को दुर्बल करके मैसूर तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया। उसके पश्चात् उसने चोल, चेर तथा पांडेय शासकों को परास्त करके दक्षिण की ओर अपने साम्राज्य को और अधिक विस्तार दिया।

चित्र-2.4 रथ मंदिर, महाबलीपुरम

- नरसिंह वर्मन ने महाबलीपुरम (मामल्लपुरम) में मंदिरों का निर्माण कराया जो अब मामल्लापुरम के रथ मंदिर कहलाते हैं। उसने त्रिचनापल्ली में भी मंदिर बनवाए। उसके समय में चीनी यात्री ह्वेनसांग कांची आया था और उसने वहां का बहुत अच्छा वर्णन किया है।
- नरसिंह वर्मन के पुत्र महेंद्रवर्मन द्वितीय (668-70 ई.) ने केवल दो वर्ष तक शासन किया। उसके पश्चात् उसका पुत्र परमेश्वर वर्मन प्रथम (670-95 ई.) सिंहासन पर बैठा।

4. नरसिंह वर्मन द्वितीय (695-722 ई.) :

- परमेश्वर वर्मन के पुत्र नरसिंह वर्मन द्वितीय का समय शांति का रहा। उसके समय में राज्य में समृद्धि बढ़ी। उसने चीनी सम्राट के दरबार में अपना राजदूत भेजा।
- नरसिंह वर्मन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र परमेश्वर वर्मन द्वितीय (721-739 ई.) सिंहासन पर बैठा। उसने अंतिम समय में चालुक्यों से पुनः संघर्ष शुरू हुआ। परमेश्वर वर्मन के उत्तराधिकारी 'दन्तिवर्मन', 'नंदि वर्मन' व 'अपराजित' हुए जो अयोग्य निकले। चोल शासक आदित्य प्रथम ने 893 ई. में इस वंश के अन्तिम शासक अपराजित पर आक्रमण करके उसे मार डाला। इससे पल्लव साम्राज्य का अन्त हो गया।

नरसिंह वर्मन द्वितीय

- कांची के कैलाशनाथ मंदिर और महाबलीपुरम के तट पर अनेक मंदिर बनवाए।
- अनेक विद्वानों को आश्रय प्रदान किए।
- विद्वान दण्डी ने 'दशकुमारचरितम्' नामक काव्य ग्रंथ की रचना की।

चित्र-2.5 कांची का कैलाशनाथ मंदिर

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पल्लव शासकों की उपलब्धियां

शासन व्यवस्था : पल्लवों की शासन व्यवस्था बहुत कुछ गुप्त और मौर्य सम्राटों की शासन व्यवस्था के समान थी। उसमें सम्राट राज्य का प्रधान था। वह बड़ी-बड़ी उपाधियां धारण करता था और राज्य की संपूर्ण शक्तियां उसमें केंद्रित थी परंतु सम्राट की सहायता के लिए विभिन्न मंत्री और राज्य के अन्य बड़े पदाधिकारी होते थे। संपूर्ण राज्य को राष्ट्रों, विषयों (जिला), कोट्टम (तहसील) और गांवों में बांटा गया था। 'भट्टारक' इनकी महत्वपूर्ण उपाधि थी। उनकी शासन व्यवस्था में ग्रामीण शासन को काफी स्वतंत्रता मिली हुई थी।

कोट्टम - प्रशासन की एक इकाई जिसके अन्तर्गत गावों का एक समूह होता था।

शिक्षा एवं साहित्य : पल्लव शासकों के समय में साहित्यिक प्रगति भी बहुत हुई। कांची के विश्वविद्यालय ने इस प्रगति में बहुत सहयोग दिया। पल्लव शासकों ने विद्वानों को आश्रय दिया। सम्राट सिंह विष्णु ने समकालीन विद्वान भारवि को अपने दरबार में आने हेतु आमंत्रित किया था तथा विद्वान दंडी को उनके राज्य में राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ था। पल्लव शासकों के समय में संस्कृत के अतिरिक्त तमिल साहित्य की भी प्रगति हुई। तमिल का 'कुरल' नामक ग्रन्थ इसी काल में लिखा गया था। पल्लवों द्वारा कांची के समीप एक मण्डप में महाभारत के नियमित पाठ का प्रबन्ध करवाया गया था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

धर्म : पल्लव शासक हिंदू धर्म को मानने वाले थे। उन्होंने विभिन्न यज्ञ किए और विष्णु, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी आदि हिंदू देवी देवताओं की मूर्तियों को मंदिरों में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने संस्कृत साहित्य और हिंदू धर्म को संरक्षण प्रदान किया। कांची का विश्वविद्यालय दक्षिण भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था और स्वयं कांची नगर हिंदुओं के सात तीर्थ नगरों में से एक प्रमुख नगर था। पल्लव शासक धार्मिक दृष्टि से उदार थे। जैन और बौद्ध धर्म के प्रति उनका व्यवहार सहिष्णु था। उनके समय में शैव और वैष्णव साहित्य की प्रगति हुई। उन्होंने जैन और बौद्ध धर्म को भी संरक्षण दिया।

कला एवं वास्तुकला : सुदूर दक्षिण में पाषाण वास्तुकला का आरंभ पल्लव शासकों ने किया था और उनके सरंक्षण में अनेक मंदिर पहाड़ों की चट्टानों को काटकर बनाए गए जिनमें विष्णु, शिव, ब्रह्मा तथा हिंदू देवी-देवताओं की मूर्तियां प्रतिष्ठित की गई।

मामल्लपुरम के शिव मंदिर, पांच पाण्डवों का मंदिर और वराह मंदिर इस समय की कला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। उनमें सुंदर मूर्तियां और चित्र बनवाए गए।

त्रिमूर्ति, गंगा-अवतरण की मूर्ति, दुर्गा-मूर्ति, वराह-मूर्ति और पांच पाण्डवों की मूर्तियां बहुत सुंदर है। देवी-देवताओं और पशु-पक्षियों के चित्रों का यहां बहुत सजीवता से चित्रण किया गया है। अतः पल्लव काल की कला एवं वास्तु कला भारतीय कला के इतिहास में निसंदेह एक प्रकाशमान अध्याय है।

सामाजिक व आर्थिक स्थिति : पल्लव काल में वर्ण व्यवस्था थी। वर्ण व्यवस्था के आधार पर कार्य विभाजन था। सामंत व्यवस्था का प्रचलन था। कृषि भूमि पर अधिकतर सामंतों का अधिकार था। सभी वर्ग सामान्यतः कृषि व्यवस्था से जुड़े हुए थे। व्यापार भी उन्नत था। कपास, गुड़, बहुमूल्य लकड़ी, गर्म मसाले इत्यादि का व्यापार किया जाता था।
कृषि की उन्नति के लिए पल्लव शासकों ने नहरों, झीलों एवं तालाबों का निर्माण करवाया। राज्य की आय के लिए विभिन्न तरह के 18 कर लगाये गए थे।

चोल वंश

चोल वंश सुदूर दक्षिण के प्राचीन राजवंशों में से एक था। संगम काल (100-250 ई.) में चोल शासक शक्तिशाली थे। 200 वर्षों से भी अधिक समय तक चोलों ने तुंगभद्रा नदी के दक्षिण के सभी भू प्रदेशों और अरब सागर के बहुत से द्वीपों पर अपनी सत्ता को स्थापित रखा और शासन तथा सभ्यता के विकास की दृष्टि से दक्षिण भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान बनाए रखा। चोलों को सूर्यवंशी माना जाता है। चोल शब्द की उत्पत्ति तमिल भाषा के 'चूल' से हुई जिसका अर्थ है 'भ्रमण करने वाला' जो पहले उत्तर भारत में रहते थे कालांतर में दक्षिण में चले गए। इसका अर्थ श्रेष्ठ से भी निकाला जाता है। करिकाल शुरुआती शासकों में से एक महान शासक था जिसने चोल साम्राज्य को उन्नति के शिखर पर पहुंचाया। उसने कावेरीपट्टनम को राजधानी बनाया। उसके बाद कुछ वर्षों के लिए इनकी शक्ति कमजोर हो गई।

चित्र-2.6 राजराजा द्वारा निर्मित ऐरावतेश्वर मंदिर

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

विभिन्न चोल शासक

चित्र-2.7 विजयालय द्वारा निर्मित शिव मंदिर, चोलेश्वरम

1. विजयालय (850-871 ई.) : नौवीं सदी में चोल शक्ति की पुनः स्थापना में प्रमुख योगदान विजयालय का था। उसने पल्लव और पाण्ड्यों के संघर्ष से लाभ उठाया और पाण्ड्यों से तंजौर को छीनकर उसे अपनी राजधानी बनाया। उसने कावेरी की निम्न घाटी और कोलसन घाटी पर विजय प्राप्त की।

2. आदित्य प्रथम (871-907 ई.) : विजयालय के पुत्र और उत्तराधिकारी आदित्य ने पल्लव शासक अपराजित को पाण्ड्यों के विरुद्ध सहायता दी। बाद में 893 ई. के लगभग उसने अपराजित को परास्त करके मार दिया और संपूर्ण तोंडमंडल पर अपना अधिकार करके चोल वंश के स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। उसने पश्चिमी गंगों को भी अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। उसने अपनी राजधानी तंजौर में अनेक शिव मंदिरों का निर्माण कराया।

3. परान्तक प्रथम (907-950 ई.) : परान्तक ने श्रीलंका और पाण्ड्य शासक राजसिंह की सम्मिलित सेनाओं को परास्त करके अपने राज्य का विस्तार किया। राष्ट्रकूट शासक कृष्ण तृतीय ने गंग शासक के साथ मिलकर चोल राज्य पर आक्रमण करके कमजोर कर दिया। 950 ई. के बाद से 985 ई. तक चोल वंश के शासक काफी कमजोर रहे।

4. राजराजा प्रथम (985-1014 ई.): राजराजा प्रथम ने चोल वंश की खोई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। उसने अनेक राजाओं को पराजित करके अपने साम्राज्य को सुरक्षित बनाया। वह एक महान विजेता होने के साथ-साथ कुशल प्रबन्धक एवं कला तथा साहित्य का संरक्षक भी था।

5. राजेन्द्र प्रथम (1014-1044 ई.) : राजेन्द्र प्रथम अपने पिता की तरह एक महान शासक था। उसने अपने पिता के शासन काल में ही शासन सम्बन्धित कार्यों में निपुणता प्राप्त कर ली थी। उसने अपने पिता के साथ कई महत्वपूर्ण युद्धों में भाग लिया। राजेन्द्र प्रथम को चोल साम्राज्य का स्तंभ भी कहा जाता है। उसने अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए पाण्ड्यों, चेरों, श्रीलंका, चालुक्यों एवं

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

बंगाल आदि पर विजय प्राप्त की। उसने बंगाल व बिहार पर विजय प्राप्त करके 'गगैंकोण्ड' की उपाधि धारण की तथा 'गगैंकोण्डचोलपुरम्' नामक राजधानी की स्थापना की।

राजेन्द्र चोल के उत्तराधिकारियों को विभिन्न शासकों से लम्बा संघर्ष करना पड़ा। जिसके कारण उनकी शक्ति कमजोर होती चली गई। राजेन्द्र चोल के बाद राजाधिराज प्रथम, राजेन्द्र द्वितीय, वीर राजेन्द्र, कुलोतुंग प्रथम आदि शासक हुए। लेकिन इनकी शक्ति कमजोर होने के कारण चोल वंश का पतन आरम्भ हो गया। 1310 ई. में अलाऊद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर ने चोलों के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया।

चोल शासकों की उपलब्धियां

शासन व्यवस्था :

चोल शासक कुशल शासक प्रबन्धक थे। केंद्र के शासन का प्रधान सम्राट होता था और वह सम्मानित उपाधियां ग्रहण करता था। तंजौर, गगैंकोण्डचोलपुरम्, मुडिकोण्डन और कांची समय-समय पर विभिन्न चोल सम्राटों की राजधानियां रही।

चोल शासक निरंकुश होते हुए भी प्रजा की भलाई और सार्वजनिक हित के कार्य में लगे रहना अपना प्रमुख कर्त्तव्य मानते थे। चोल शासकों ने अपने समय में भी युवराज को चुनने और शासन में उसे सम्मिलित करने की परंपरा को आरंभ किया था। सम्राट का पद पैतृक होता था।

सम्राट की सहायता के लिए विभिन्न मंत्री तथा अन्य बड़े पदाधिकारी होते थे। राज्य के अधिकारियों को बड़ी-बड़ी उपाधियां और जागीरें दी जाती थीं। अधिकारी उच्च और निम्न दो प्रकार के होते थे। ऊपर की श्रेणी को 'पेरूंदेनम' तथा नीचे की श्रेणी को 'शिरूदनम' कहा जाता था। 'उडनकुट्टम' नामक कर्मचारी राजा का निजी सहायक था। चोल शासकों ने एक व्यवस्थित असैनिक शासन संगठन की स्थापना की थी।

सैनिक व्यवस्था :

चोल सम्राट ने एक अच्छी विशाल सेना का गठन किया और श्रेष्ठ नौसेना तैयार की। हाथी, घुड़सवार और पैदल सैनिक, सेना के मुख्य अंग थे। अभिलेखों से चोल सेना में 70 रेजिमेंटों के होने का उल्लेख मिलता है। उनकी सेना में साठ हजार हाथी और एक लाख पचास हजार सैनिक थे। अरब से श्रेष्ठ घोड़े मंगवाए जाते थे और उन पर बहुत धन व्यय किया जाता था। सैनिकों की छावनियां होती थीं जहां उन्हें शिक्षा और अनुशासन का प्रशिक्षण दिया जाता था।

सम्राट के अंगरक्षक पृथक् होते थे, जिन्हें वेलाइक-कारा पुकारते थे। योग्य सैनिकों और सरदारों को 'क्षत्रिय शिरोमणि' की उपाधि देकर सम्मानित किया जाता था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

न्याय व्यवस्था :

चोलों ने एक संगठित न्याय व्यवस्था का गठन किया। अपराध होने पर अधिकतर जुर्माना लगाया जाता था। हत्या किए जाने पर 16 गायों का जुर्माना किया जाता था और मृत्यु दंड भी दिया जाता था। राजा सबसे बड़ा न्यायाधीश माना जाता था।

प्रशासनिक इकाइयां :

क्या आप जानते है?
वर्तमान पंचायत व्यवस्था चोल प्रशासन की देन है।

चोलों ने सम्पूर्ण साम्राज्य को 6 प्रांतों में विभाजित किया। प्रान्त को मण्डलम तथा इसके अध्यक्ष को वायसराय कहा जाता था। मण्डलम का विभाजन कोट्टम अथवा वलनाडु में होता था तथा कोट्टम को आगे नाडु में विभाजित किया गया था। नाडु की सभा को नाट्टार कहा जाता था। जिसमें सभी गांवों व नगरों के प्रतिनिधि होते थे।

स्थानीय स्वशासन :

चोल शासन की एक मुख्य विशेषता स्थानीय स्वशासन माना गया है। चोल शासन में गांव से लेकर मंडल तक के लिए स्वशासन की व्यवस्था थी। गांव की महासभा का शासन में बहुत महत्व था। इसके अतिरिक्त कुर्रम, नाडु और मंडल तक में प्रतिनिधि सभाएं होती थीं जिनसे शासन में सहयोग प्राप्त किया जाता था। गांव में दो प्रकार की संस्थाए कार्य करती थी उर तथा सभा। उर गांव के सामान्य लोगो की व सभा विशेष लोगों का संगठन था।

- **मंडलम - प्रान्त**
- **नाडु - जिला**
- **कुर्रम - कई ग्रामो का समूह**

आर्थिक स्थिति :

चोल शासन में प्रजा सुखी व संपन्न थी। चोल-शासकों ने कृषि की वृद्धि के लिए सिंचाई की अच्छी व्यवस्था की थी जो राज्य की आय और प्रजा की समृद्धि का मुख्य आधार था। उनके समय में व्यापार और उद्योगों में भी प्रगति हुई थी। राजमार्गों की सुरक्षा का अच्छा प्रबंध था और एक शक्तिशाली नौसेना के कारण समुद्री मार्ग से विदेशी व्यापार में प्रगति हुई। उस समय विदेशों से भी व्यापार होता था। चोल साम्राज्य सामन्तीय अर्थव्यवस्था पर आधारित था।

धार्मिक स्थिति :

चोल शासक शैव अथवा वैष्णव संप्रदाय के समर्थक थे। चोलों के समय में दक्षिण भारत में शैव और वैष्णव संप्रदाय का प्रसार हुआ। इस काल में मंदिरों का स्थान प्रमुख बन गया था। मंदिर धर्म, शिक्षा, कला और जन सेवा के केंद्र बन गए थे। इस कारण चोल शासकों ने अनेक मंदिरों का निर्माण किया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

साहित्य एवं कला :

चोल सम्राटों का शासनकाल तमिल साहित्य का 'स्वर्ण काल' था। साहित्य के क्षेत्र में मुख्यत: काव्य ग्रंथों की रचना हुई। जैन विद्वान तिरुतक्कदेवर ने 'जीवकचिंतामणि', तोलामोलि ने 'सूलामणि' और कंबन ने 'रामावतारम' नामक ग्रंथ लिखे।

ललित कलाएं :

चोल शासक महान निर्माता थे। उनके समय में अनेक नगर, झील, बांध एवं तालाब आदि बनाए गए। राजेंद्र प्रथम द्वारा अपनी राजधानी गंगईकोड चोलपुरम के निकट बनवाई गई झील बहुत विशाल थी। उससे अनेक नहरें निकाली गई थीं।

व्यक्तिगत गतिविधि

चोल साम्राज्य के जल का मुख्य स्रोत कावेरी नदी थी। यह नदी वर्तमान में किन राज्यों में से बहती है मानचित्र पर अंकित करें।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

माइंड मैप

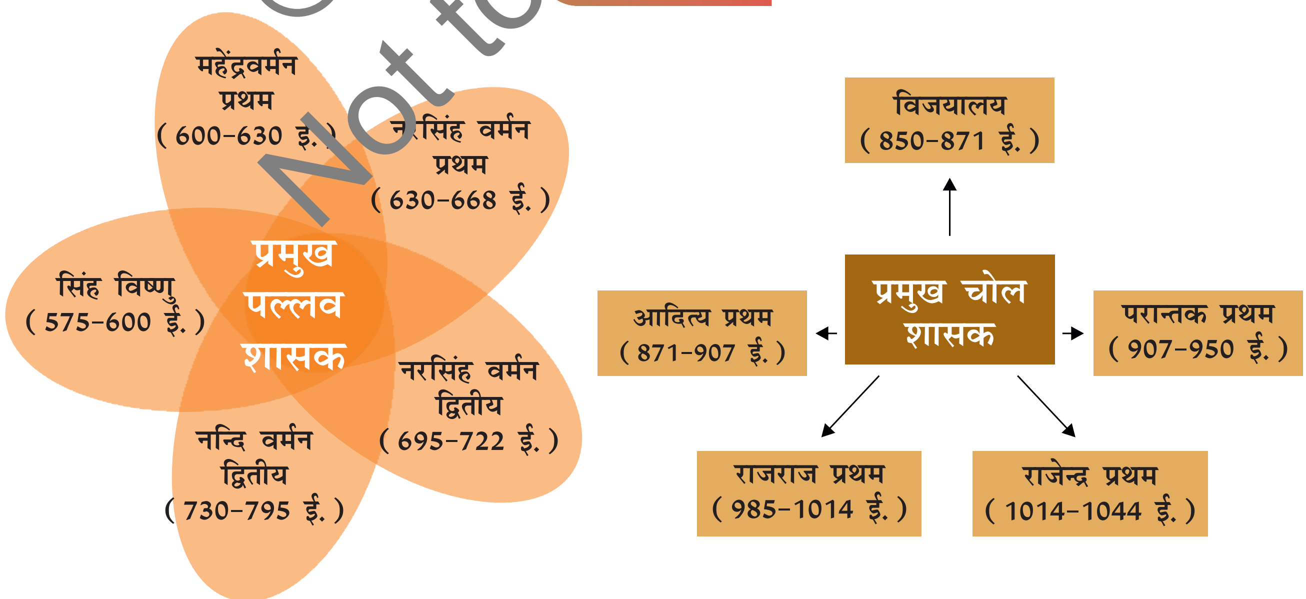

आओ जानें, कितना सीखा

सही उत्तर छांटें :

1. चालुक्यों और पल्लवों के बीच लम्बे समय तक चलने वाले संघर्ष का आरंभ किसने किया?
   क) पुलकेशिन-।। ख) महेन्द्रवर्मन-। ग) नरसिंह वर्मन-। घ) इनमें से कोई नहीं

2. कांची के कैलाशनाथ मंदिर का निर्माण किसने करवाया था?
   क) चालुक्य ख) पल्लव ग) वाकाटक घ) सातवाहन

3. माम्मलपुरम का दूसरा नाम है।
   क) महाबलिपुरम ख) उज्जयिनी ग) मदुरै घ) कल्याणी

4. निम्नलिखित में से किस शासक के पास एक शक्तिशाली नौसेना थी?
   क) चोल ख) पांड्य ग) चेर घ) पल्लव

5. ह्वेनसांग के कांची प्रवास के समय पल्लव शासक था।
   क) महेन्द्रवर्मन-। ख) नरसिंह वर्मन-। ग) महेन्द्रवर्मन-।। घ) नरसिंह वर्मन-।।

रिक्त स्थान की पूर्ति करें :

1. चोल शासक .... अथवा .... संप्रदाय के समर्थक थे।
2. तोंडेयर को संस्कृत में .... कहा गया है।
3. .... का लेखक रवि कीर्ति जैन था।
4. .... वेंगी वंश का सबसे शक्तिशाली शासक हुआ।

उचित मिलान करो :

1. पुलकेशिन द्वितीय	क) नरसिंह वर्मन
2. पिष्टुपुर	ख) महेंद्रवर्मन प्रथम
3. माम्मलपुरम के रथ मंदिर	ग) राजेंद्र प्रथम
4. मत्तविलास प्रहसन	घ) दक्षिण में कदंबों को परास्त किया
5. गगैंकोण्डचोलपुरम	ङ) पूर्वी चालुक्यों की राजधानी

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

निम्नलिखित कथनों में सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाओ :

1. चोल सम्राटों का शासन काल तमिल साहित्य का स्वर्णकाल था। ( )
2. सुदूर दक्षिण में पाषाण वास्तुकला का आरंभ चोल शासकों ने किया। ( )
3. कोट्टम पल्लव प्रशासन की वह इकाई है जिसके अंतर्गत गांव का एक समूह होता है। ( )
4. विद्वान दंडी ने "दशकुमारचरितम" नामक काव्य ग्रंथ की रचना की। ( )
5. महान कवि भारवी विक्रमादित्य के दरबारी कवि थे। ( )

लघु प्रश्न :

1. किस शासक ने वातापी किले का निर्माण करवाया?
2. चालुक्य काल के दौरान वास्तुकला के क्षेत्र में किस प्रकार का विकास हुआ? उदाहरण दें।
3. चालुक्य के कल्याणी वंश के एक शक्तिशाली राजा का नाम बताएं एवं उनकी किसी भी एक उपलब्धि का वर्णन करें।
4. पुलकेशिन द्वितीय की तीन उपलब्धियों का वर्णन करो?
5. पल्लव काल में निर्मित मंदिरों की क्या विशेषताएं थी?

आइए विचार करें :

1. चोल काल की आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक दशा के बारे संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. कांची के पल्लवों और बादामी के चालुक्यों के बारे में चर्चा करें।
3. चालुक्य एवं पल्लव शासकों द्वारा शिक्षा एवं साहित्य के विकास के लिए किए गए प्रयासों की तुलनात्मक व्याख्या करें।
4. चोल के केंद्रीय और प्रांतीय शासन पर विश्लेषणात्मक टिप्पणी करें।
5. पल्लव शासकों के काल में वास्तुकला का विकास किस प्रकार हुआ? संक्षेप में लिखो।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ करके देखें

1. भारत के मानचित्र पर दक्षिण भारतीय राज्यों को उनकी राजधानी सहित अंकित करें ।

अध्याय - 3

त्रिपक्षीय संघर्ष : पाल, प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट

आओ जानें

- कन्नौज का त्रिपक्षीय संघर्ष
- त्रिपक्षीय शक्तियों का संक्षिप्त विवरण
- त्रिपक्षीय शक्तियों का सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक योगदान
- संघर्ष के परिणाम

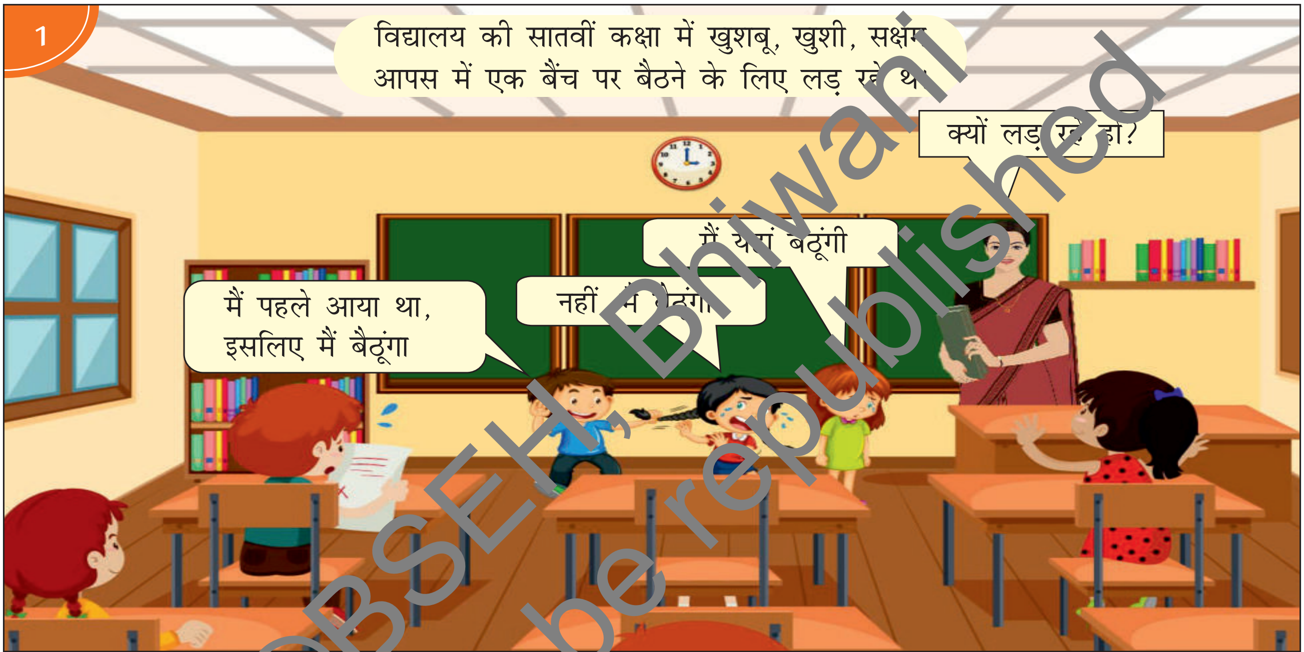

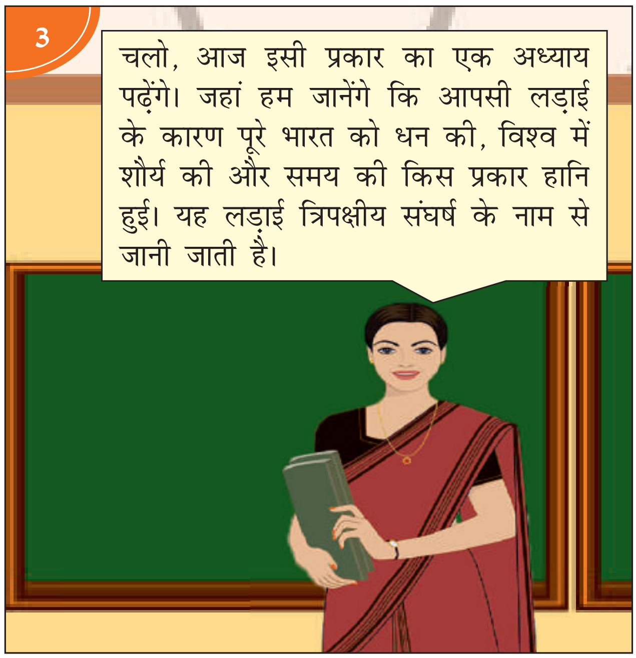

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आठवीं शताब्दी से पहले की भारत की राजनीतिक स्थिति के बारे में हम पिछले अध्यायों में पढ़ चुके हैं। इस अध्याय में हम जानेंगे की हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् भारत की राजनीतिक एकता समाप्त हो गई। विशाल साम्राज्य के स्थान पर छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ। इन छोटे-छोटे राज्य की क्षेत्रीयता तथा विकेन्द्रीकरण की भावना देश के लिए घातक सिद्ध हुई। परन्तु इसके परिणामस्वरूप इस युग में कई प्रबल राजनीतिक शक्तियां उभर कर आई इन शक्तियों ने उत्तरी भारत में अपना विशाल साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। इस प्रयास में तीन शक्तियां प्रमुख थी – पाल, प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट।

त्रिपक्षीय संघर्ष

उत्तरी भारत विशेषत: कन्नौज पर अधिकार करने के लिए पाल, प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट नामक तीन शक्तियों में आपस में लगभग दो शताब्दियों तक जो संघर्ष चला उसे त्रिपक्षीय संघर्ष कहा जाता है। इस संघर्ष में कभी एक विजयी रहा, तो कभी दूसरा। यह संघर्ष अंतत: तीनों साम्राज्यों के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। इतिहास में ये तीनों साम्राज्य अपने उत्तम प्रशासन, धार्मिक सहनशीलता की नीति, कला एवं साहित्य को प्रोत्साहन देने के लिए प्रसिद्ध थे। नि:सन्देह इन तीनों साम्राज्यों ने विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन तीनों साम्राज्यों के बारे में इस अध्याय में हम विस्तार से चर्चा करेंगे।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

कन्नौज के लिए संघर्ष क्यों?

- हर्षवर्धन ने कन्नौज को अपने साम्राज्य की राजधानी बना कर उसे एक गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया था।
- यह उत्तरी भारत का सबसे बड़ा सांस्कृतिक केंद्र था।
- यह प्रदेश बहुत उपजाऊ तथा व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। इसलिए कन्नौज को प्राप्त करने वाला यहां से अपार धन प्राप्त कर सकता था।
- उस समय के राजाओं का यह विश्वास था कि कोई राजा कन्नौज पर अधिकार करके ही उत्तर भारत के विशाल उपजाऊ क्षेत्र पर अपनी सर्वोच्चता का दावा कर सकता था।
- इस कारण कन्नौज राजनीतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक पक्षों से बहुत महत्वपूर्ण प्रदेश था।

कन्नौज के लिए त्रिकोणीय संघर्ष पाल वंश के राजा धर्मपाल के समय 780 ई. में आरंभ हुआ। धर्मपाल, पाल वंश का एक शक्तिशाली शासक था। वह कन्नौज पर अधिकार करके अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। किंतु प्रतिहार राजवंश का राजा वत्सराज इस बात को सहन नहीं कर सकता था। उसने गंगा-यमुना दोआब के मध्य हुई एक लड़ाई में धर्मपाल को पराजित कर दिया। परंतु इसी समय राष्ट्रकूट के महान राजा ध्रुव ने कन्नौज को अपने अधिकार में लेने के लक्ष्य से वत्सराज पर आक्रमण करके उसे भगा दिया, फिर उसने धर्मपाल को भी लड़ाई में पराजित कर दिया। इस प्रकार साम्राज्य के लिए पाल, गुर्जर-प्रतिहार व राष्ट्रकूटों में त्रिकोणीय संघर्ष आरंभ हुआ।

राष्ट्रकूट राजा ध्रुव कन्नौज में अभी अपनी स्थिति को दृढ़ नहीं कर पाया था कि उसे अपने साम्राज्य में राज सिंहासन के लिए पैदा हुई कठिनाइयों के कारण वापस लौटना पड़ा। ऐसी स्थिति का लाभ उठाकर धर्मपाल फिर अपने सैनिकों को साथ लेकर कन्नौज की ओर बढ़ा। उसके सैनिकों ने इंद्रयुद्ध को पराजित करके कन्नौज पर अधिकार कर लिया। धर्मपाल ने अब अपने आधिपत्य में कन्नौज पर चक्रयुद्ध को बिठाया।

वत्सराज की मृत्यु के पश्चात् नागभट्ट-द्वितीय प्रतिहार राजघराने का नया शासक बना। उसने चक्रयुद्ध को पराजित करके कन्नौज पर अधिकार कर लिया। इस कारण धर्मपाल को नागभट्ट द्वितीय के साथ युद्ध करना पड़ा। मुंगेर (बिहार) में हुए इस युद्ध में धर्मपाल की पराजय हुई।

धर्मपाल के आह्वान पर राष्ट्रकूट शासक गोविंद तृतीय, जो ध्रुव का उत्तराधिकारी था कन्नौज की ओर बढ़ा। उसने नागभट्ट को एक युद्ध में पराजित कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया किंतु शीघ्र ही नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज पर पुनः अधिकार कर लिया।

नागभट्ट द्वितीय के दुर्बल उत्तराधिकारी रामभद्र के समय में पाल वंश के शासक देवपाल ने कन्नौज को अपने अधिकार में ले लिया था। रामभद्र के पश्चात् मिहिरभोज प्रतिहार वंश का नया शासक बना। वह प्रतिहार वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। उसने देवपाल से कन्नौज को जीत कर उसे अपनी राजधानी बनाया। तत्पश्चात् कन्नौज अधिकतर प्रतिहार शासकों की राजधानी रहा किंतु उस पर पाल व राष्ट्रकूट शासकों का प्रभाव भी बना रहा।

राष्ट्रकूट

ध्रुव	780-793 ई.
गोविंद तृतीय	793-814 ई.
अमोघवर्ष	814-878 ई.
कृष्ण	878-914 ई.

गुर्जर-प्रतिहार

वत्सराज	783-795 ई.
नागभट्ट	795-833 ई.
रामभद्र	833-836 ई.
मिहिरभोज	836-889 ई.
महेन्द्र पाल	890-910 ई.

पाल

धर्मपाल	770-810 ई.
देवपाल	810-850 ई.
विग्रहपाल	850-860 ई.
नारायणपाल	860-915 ई.

पाल वंश

आठवीं सदी से लेकर दसवीं सदी के मध्य तक भारत में तीन शक्तिशाली साम्राज्यों का उदय हुआ। इन साम्राज्यों के नाम थे पाल, प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट। इनमें से पाल साम्राज्य नौवीं शताब्दी के मध्य तक पूर्वी और उत्तरी भारत में, प्रतिहार साम्राज्य दसवीं शताब्दी के मध्य तक पश्चिमी एवं ऊपरी गंगा घाटी में तथा राष्ट्रकूट दक्षिण में दसवीं शताब्दी के अंत तक प्रभावशाली रहा।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आठवीं शताब्दी में उत्तरी भारत में जिन प्रसिद्ध राजवंशों की स्थापना हुई, उनमें से पाल वंश भी एक था। इस वंश के शासकों ने बंगाल पर चार सौ वर्षों तक शासन किया। इस वंश के प्रमुख शासक तथा उनका योगदान इस प्रकार से है :

गोपाल इस वंश का प्रथम शासक माना जाता है। वह 647 ई. में शशांक की मृत्यु के पश्चात् फैली अराजकता को समाप्त करके 750 ई. में शासक बना। उसने न केवल समस्त बंगाल को एकत्रित किया बल्कि वहां फैली अव्यवस्था को दूर कर शांति की स्थापना भी की। परिणामस्वरूप उसके समय में बंगाल पुनः एक संगठित तथा खुशहाल राज्य बन गया।

इस वंश के अन्य प्रमुख शासक धर्मपाल, देवपाल, नारायण पाल आदि थे। नारायण पाल के समस्त उत्तराधिकारी कमजोर निकले परिणामस्वरूप पाल वंश का तीव्रता से पतन होता चला गया। अन्ततः 1197 ई. में मुहम्मद गौरी के सेनापति ने पाल वंश को सर्वथा नष्ट कर दिया।

पाल वंश का योगदान

पाल शासक अपने शासन काल में समस्त बंगाल को एकत्र करके शान्ति और खुशहाली लाने में सफल रहे।

- पाल शासकों ने बौद्ध धर्म को राजकीय धर्म घोषित करके बंगाल व बिहार में अनेक विहारों, मठों तथा मन्दिरों का निर्माण करवाया। दुर्भाग्य से बहुत सारे भवन मुस्लिम आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिए।
- भवनों के अतिरिक्त पाल शासकों ने अपने राज्य में बहुत सारे तालाबों तथा झीलों का निर्माण भी करवाया।
- उनके समय में मूर्तिकला तथा चित्रकला के क्षेत्रों में भी आश्चर्यजनक उन्नति हुई। इस काल में जो मूर्तियां बनाई गईं, उनमें से महात्मा बुद्ध की बनी मूर्तियां विशेष रूप से बहुत आकर्षक हैं। ये मूर्तियां काले पत्थर तथा कांसे की बनी हुई हैं।
- पाल शासक शिक्षा तथा साहित्य के महान संरक्षक थे। शिक्षा के प्रसार के लिए उन्होंने सोमपुरी, विक्रमशिला तथा उदन्तपुरी में शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की।

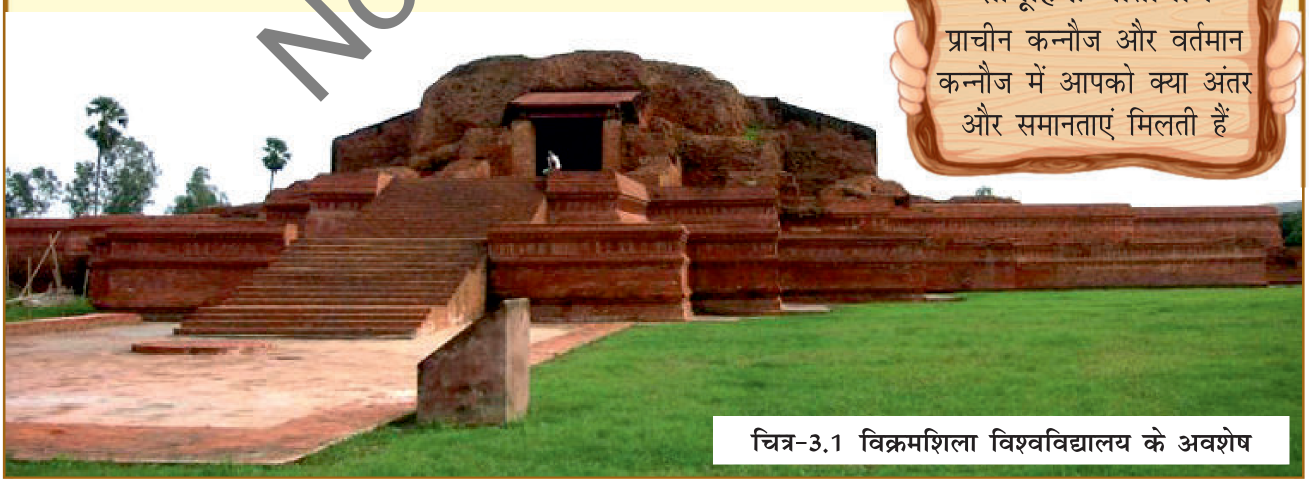

चित्र-3.1 विक्रमशिला विश्वविद्यालय के अवशेष

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

- इनके अतिरिक्त नालंदा विश्वविद्यालय को आर्थिक सहायता देकर इसके सम्मान में और वृद्धि की। इन विश्वविद्यालयों में न केवल देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों बल्कि विदेशों (चीन, बर्मा, थाईलैंड, श्रीलंका एवं दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों) से भी बड़ी संख्या में विद्यार्थी शिक्षा प्राप्ति के लिए आते थे। इस कारण जहां शिक्षा के प्रसार में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई वहां भारतीय संस्कृति को विदेशों में फैलने का अवसर भी मिला। इसके साथ-साथ संस्कृत साहित्य का विकास भी होता रहा।
- संध्याकरनंदी, चक्रपाणि, माधव तथा जीमूतवाहन इस काल के सर्वाधिक प्रसिद्ध विद्वान थे। संध्याकरनंदी ने 'रामचरित', चक्रपाणि ने 'चक्रदूत', माधव ने 'रोग निदान' तथा जीमूतवाहन ने 'कला विवेक' तथा 'व्यवहार मात्रक' नामक प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना की।

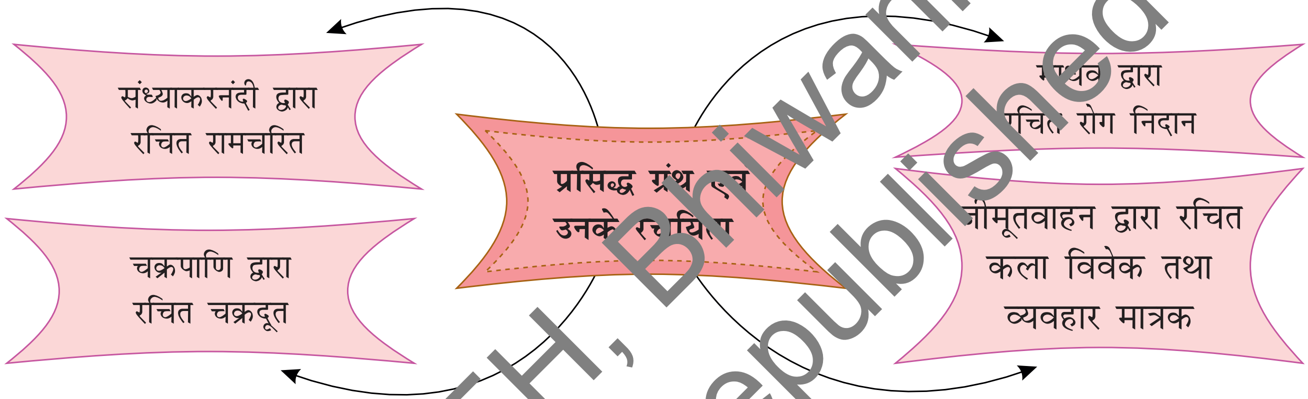

पालों के राज्य में राजस्व एकत्र करने के लिए ग्रामपतियों और दशग्रामिकों के अधीन क्रमशः एक-एक और दस-दस गांव के एकांश हुआ करते थे। दशग्रामिक प्रणाली में राजा द्वारा नियुक्त अधिकारी अधीनस्थ क्षेत्र का प्रशासन सीधे केन्द्र के नियंत्रण में करता था। पालों के अधीन राज-कर्मचारियों की बहुलता थी। जो सामन्ती राज्य व्यवस्था के अंतर्गत दिखाई देती है। पाल शासन के अधीन सामन्त समय-समय पर आर्थिक व सैनिक सहायता प्रदान करते रहते थे। इस प्रकार राजनैतिक एकता के साथ-साथ सांस्कृतिक क्षेत्र में भी पालों के 400 वर्षों के शासन काल में बंगाल एवं उत्तर भारत ने विशेष उपलब्धियां प्राप्त की।

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

गुर्जर-प्रतिहार

प्रतिहार वंश की गणना राजपूतों के प्रसिद्ध वंशों में की जाती है। कुछ विद्वानों का मानना है की वे लोग ब्राह्मण थे, जो बाद मे क्षत्रिय बन गये जो भी हो गुर्जर-प्रतिहार शक्तिशाली शासक थे और वे राजस्थान के गुर्जर कबीले से संबंध रखते थे, जिस कारण इनको गुर्जर-प्रतिहार कहा जाता है। चंदबरदाई के अनुसार उनकी उत्पत्ति अग्निकुंड से हुई।

मानचित्र-3.1 : पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट साम्राज्य

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते हैं?

- गुर्जर-प्रतिहारों की कई शाखाएं थी उनमें से उज्जैन शाखा के शासक प्रमुख थे। उन्होंने ही त्रिपक्षीय संघर्ष में भाग लिया।
- ग्वालियर प्रशस्ति के अनुसार नागभट्ट प्रथम ने अरबों की सेना को हराया।

गुर्जर-प्रतिहारों की तीन शाखाएं

- प्रथम शाखा भृगुकच्छ (भड़ौच)
- द्वितीय शाखा मण्डोर (राजस्थान)
- तृतीय शाखा उज्जैन

प्रमुख शासक व उनका योगदान

- नागभट्ट प्रथम ने उज्जैन में गुर्जर-प्रतिहार वंश की स्थापना की और साम्राज्य का विस्तार किया।
- वत्सराज, नागभट्ट द्वितीय, रामभद्र, मिहिरभोज प्रथम इस वंश के सबसे महान शासक हुए। जिन्होंने कन्नौज पर अधिकार करके समस्त उत्तरी भारत पर प्रतिहारों के साम्राज्य का विस्तार किया।
- मिहिरभोज के पश्चात महिपाल, महेंद्रपाल द्वितीय, महिपाल द्वितीय, विजयपाल, राज्यपाल, त्रिलोचनपाल आदि शासकों ने शासन किया। ये शासक अयोग्य निकले।
- 1018 ई. में जब महमूद गजनी ने कन्नौज पर आक्रमण किया तो राज्यपाल बिना मुकाबला किए भाग गया। अत: महमूद गजनी ने कन्नौज में भारी लूटमार की। राजपूत इस अपमान को सहन नहीं कर सके। उन्होंने राज्यपाल को गिरफ्तार करके उसका वध कर दिया और उसके पुत्र त्रिलोचन पाल को राजगद्दी पर बिठा दिया।
- त्रिलोचन पाल ने 1027 ई. तक शासन किया। वह भी गुर्जर-प्रतिहार वंश के गौरव को स्थापित करने में असफल रहा है। अत: उसकी मृत्यु के साथ ही इस महान वंश का भी अंत हो गया।

सामान्यत: प्रतिहार राज्य का प्रशासन सामन्त लोग चलाते थे। सामन्त उपाधियां धारण करते थे। वे समय-समय पर शासक को आर्थिक एवं सैनिक सहायता प्रदान करते थे। सामन्त लोग बड़ी शानौ-शौकत से रहते थे। राज्य में वन व खाली भूमि सामन्त की ही मानी जाती थी। प्रतिहारों के राज्य में चरागाह, परती जमीन व अन्य भूमि जमीन के उपभोग के अधिकार छोटे सामन्तों को दे दिए जाते थे। उस समय कृषि दासत्व की प्रथा भी प्रचलित था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते है?

मिहिरभोज प्रतिहार वंश का सबसे शक्तिशाली शासक था। दौलतपुर अभिलेख के अनुसार उसे 'प्रभास' तथा ग्वालियर अभिलेख में 'आदि वराहं' कहा गया है। उसने विदेशी आक्रमणकारी हूणों को पराजित किया।

चित्र-3.2 प्रतिहार सम्राट मिहिरभोज के शासन के समय चलाये गये चांदी के सिक्के

कला और वास्तुकला के क्षेत्र में योगदान

गुर्जर–प्रतिहार शासन कला, वास्तुकला और साहित्य के महान संरक्षक थे। मिहिरभोज, वंश का सबसे उत्कृष्ट शासक था। इस अवधि की उल्लेखनीय मूर्तियों में विष्णु का विश्वरूप स्वरूप और कन्नौज से शिव और पार्वती का विवाह शामिल हैं। ओसिया, आभानेरी और कोटा (राजस्थान) में खड़े मंदिरों की दीवारों पर सुंदर नक्काशी देखी जा सकती है। ग्वालियर संग्रहालय में प्रदर्शित सुरसुंदरी नाम की महिला आकृति गुर्जर–प्रतिहार कला की सबसे आकर्षक मूर्तियों में से एक है। आमतौर पर प्रारंभिक प्रतिहारों को श्रेय दिए गए वास्तुशिल्प कार्यों के सबसे महत्वपूर्ण समूह ओसियन (राजस्थान) में हैं। पूर्व में चित्तौड़ के महान किले से आधुनिक गुजरात की दक्षिण सीमा तक प्रतिहारों ने 8वीं शताब्दी के अंत तक सभी कलाओं को अवशोषित कर लिया था।

राष्ट्रकूट वंश

राष्ट्रकूट वंश दक्षिण के प्रसिद्ध राजवंशों में से एक था। इस राजवंश ने 742 ई. से 973 ई. तक शासन किया।

फ्लीट का कथन है कि राष्ट्रकूट उत्तरी भारत के राठौड़ वंश में से एक थे। सी.वी. वैद्य के अनुसार राष्ट्रकूट मराठा वंश में से थे। डॉ. भंडारकर का विचार है कि राष्ट्रकूटों के पूर्वज किसी राष्ट्र (राज्य) के गवर्नर थे, जिस कारण उनके राजवंश का नाम राष्ट्रकूट पड़ गया। इनकी कई शाखाओं की जानकारी मिलती है।

राष्ट्रकूट वंश की प्रमुख शाखाएं

- मानयूर शाखा
- अलिचपूर शाखा
- मान्यखेत शाखा

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

प्रमुख शासक व उनका योगदान

क्या आप जानते हैं?
राष्ट्रकूटों की मान्यखेत शाखा (मालखेड़ा, गुलबर्गा – कर्नाटक) ने इतिहास में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की।

राष्ट्रकूट वंश का संस्थापक दन्तिदुर्ग था। उसने 742 ई. में इस वंश की स्थापना की थी। उसने कांची, कौशल तथा मालवा आदि राज्यों पर विजय प्राप्त करके राष्ट्रकूट राज्य की स्थापना की। 752–753 ई. में उसने चालुक्य शासक कीर्तिवर्मन द्वितीय को पराजित करके सारे महाराष्ट्र को अपने अधिकार में ले लिया। इस महत्त्वपूर्ण विजय के पश्चात् दन्तिदुर्ग ने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की।

कृष्ण प्रथम एवं गोविंद द्वितीय : 756 ई. में दन्तिदुर्ग की मृत्यु के पश्चात् उसका चाचा कृष्ण प्रथम राज सिंहासन पर बैठा। उसने दन्तिदुर्ग द्वारा आरंभ किए गए कार्य को पूरा किया। उसने चालुक्य शक्ति का पूर्ण रूप से दमन कर दिया। उसने गंग शासक को पराजित करके उनके प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। कृष्ण प्रथम न केवल एक विजेता था बल्कि एक महान भवन निर्माता भी था। उसके द्वारा एलोरा में शिव की स्मृति में बनवाया गया कैलाश मंदिर अपनी उत्तम कला का प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करता है। 773 ई. में कृष्ण प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र गोविंद द्वितीय राज सिंहासन पर बैठा। वह बहुत अयोग्य शासक सिद्ध हुआ। इसलिए उसके छोटे भाई ध्रुव ने उसे सिंहासन से उतार दिया तथा स्वयं को राजा घोषित कर दिया।

ध्रुव : ध्रुव के राज सिंहासन पर बैठने के साथ ही राष्ट्रकूटों के इतिहास में एक नए युग की शुरुआत हुई। उसने पहले दक्षिण के गंग, पल्लव, वेंगी तथा मालव राज्यों को पराजित करके उनके अनेक प्रदेशों को अपने अधिकार में ले लिया। तत्पश्चात् उसने उत्तर भारत की ओर ध्यान दिया और प्रतिहार शासक वत्सराज व पाल शासक धर्मपाल को पराजित करके उनके कई प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। ध्रुव निःसंदेह भारत के योग्य शासकों में से एक था। उसके शासनकाल में राष्ट्रकूटों ने सम्मान व गौरव प्राप्त किया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

राष्ट्रकूटों के अन्य महान शासक गोविन्द तृतीय, अमोघवर्ष, कृष्ण तृतीय तथा इन्द्र तृतीय आदि थे।

इंद्र तृतीय जिसने 915 ई. से 927 ई. तक शासन किया, वह भी एक महान योद्धा था। उसने परमार तथा चालुक्य शासकों को पराजित किया। उसके शासनकाल की सबसे महत्वपूर्ण सफलता प्रतिहार शासक महिपाल को हराकर कन्नौज पर अधिकार करना था। परिणामस्वरूप उसके सम्मान में बहुत वृद्धि हुई।

अन्य राष्ट्रकूट शासक : इंद्र तृतीय के बाद राष्ट्रकूट राज्य का पतन आरंभ हो गया था। उसके पश्चात् अमोघवर्ष द्वितीय, गोविंद चतुर्थ, अमोघवर्ष तृतीय, कृष्ण तृतीय तथा कर्क द्वितीय ने शासन किया। इन शासकों में से केवल कृष्ण तृतीय एक योग्य शासक सिद्ध हुआ लेकिन उसकी सफलताएं एक बुझते हुए दीपक की लौ मात्र थी। कर्क द्वितीय इस वंश का अंतिम शासक था। उसे 973 ई. में चालुक्य शासक तैल द्वितीय ने पराजित करके राष्ट्रकूट वंश का अंत कर दिया।

दक्षिण भारत में राष्ट्रकूटों ने एक विस्तृत एवं गौरवमयी साम्राज्य की स्थापना की। अपनी वीरता द्वारा समूचे दक्षिण भारत को अपने प्रभाव के अधीन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने उत्तरी भारत के विख्यात केंद्र कन्नौज को कुछ वर्षो तक अपने अधीन रखा।

दक्षिण के इतिहास में 742 ई. से लेकर 973 ई. तक राष्ट्रकूटों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। उनकी सफलता को देखते हुए उनके समय को दक्षिण भारत के इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से स्मरण किया जाता है। दक्षिण में राष्ट्रकूटों ने चोल, पल्लव और चालुक्य शासकों को कड़ी पराजय दी थी।

राष्ट्रकूट शासकों की शासन व्यवस्था

- राष्ट्रकूट शासकों की शासन व्यवस्था बहुत उच्च कोटि की थी। उत्तराधिकार से संबंधित झगड़ों को दूर करने के लिए शासक प्रायः अपने बड़े पुत्र को युवराज नियुक्त करते थे।
- प्रशासन व्यवस्था की कार्य कुशलता के लिए साम्राज्य को राष्ट्रों (प्रांतों), विषयों और भुक्तियों में विभाजित किया जाता था। इनमें बहुत ही योग्य तथा ईमानदार कर्मचारियों को नियुक्त किया जाता था।
- नगर और उसके आसपास के क्षेत्रों में कानून व्यवस्था बनाए रखने का उत्तरदायित्व कोष्टपाल अथवा कोतवाल का था।
- शासन की सबसे छोटी इकाई गांव थी। गांव का मुखिया जिसे ग्राम महतर कहा जाता था। उसके सहयोग के लिए देश ग्रामकूट (राजस्व अधिकारी) नामक अधिकारी नियुक्त किए जाते थे।
- केंद्रीय सरकार गांवों की शासन व्यवस्था में बहुत कम हस्तक्षेप करती थी। लोगों पर कर का भार बहुत कम था।
- राष्ट्रकूट शासकों ने साम्राज्य की सुरक्षा और विस्तार के लिए एक शक्तिशाली सेना की व्यवस्था की थी। उनके सैनिकों की कुल संख्या लगभग पांच लाख थी। सेना में भर्ती योग्यता के आधार पर की जाती थी। इस सेना के सहयोग द्वारा राष्ट्रकूट शासक महान विजय प्राप्त कर पाए।

राजा : राजा की स्थिति सबसे महत्वपूर्ण थी। राजपद वंशानुगत था। कभी-कभी उत्तराधिकार को नजर अंदाज करके योग्य व्यक्ति को भी शासक बनाया जाता था। वे बड़ी-बड़ी उपाधियां धारण करते थे। जैसे 'परमभट्टारक', 'महाराजाधिराज', 'सुवर्गवर्ष' आदि।

राष्ट्रकूट शासक राजधानी में ऐश्वर्य तथा वैभव के साथ रहते थे। वे बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषण धारण करते थे। उनका दरबार बहुत वैभवशाली होता था। राजसभा में सामन्त, राजदूत, मंत्री, कवि, ज्योतिषि नियमित रूप से उपस्थित रहते थे। महिलाएं भी राजदरबार में उपस्थित रहती थीं।

युवराज : राष्ट्रकूट शासक अपने जीवन काल में ही युवराज की नियुक्ति कर देते थे। युवराज अपने पिता की शासन कार्यों में सहायता करता था। युवराज युद्धों में भी अपने पिता के साथ जाता था।

मन्त्रिपरिषद् : शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए राष्ट्रकूट शासकों ने मन्त्रिपरिषद का गठन किया था। अधिकांश मन्त्री सैनिक पदाधिकारी होते थे। मन्त्रियों का पद प्रायः पैतृक होता था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

राज्य व्यवस्था : राष्ट्रकूटों ने अपने नियन्त्रण वाले क्षेत्रों को अनेक राष्ट्रों (प्रान्तों) में बांटा हुआ था। राष्ट्र प्रधान अधिकारी 'राष्ट्रपति' कहलाता था। उसका मुख्य कार्य राष्ट्र में शान्ति व्यवस्था बनाये रखना एवं भू-राजस्व इकट्ठा करना था।

विषय (जिला) : राष्ट्रकूटों ने अपने राज्य को 'विषय' में बांटा हुआ था। विषय का प्रमुख अधिकारी 'विषयपति' होता था। एक विषय में 1000 से लेकर 4000 तक गांव होते थे। इनका कार्य भी विषय में राष्ट्रपति के आदेशों का पालन करना होता था।

भुक्ति (तहसील) का प्रबंध : विषयों को आगे भुक्तियों में विभाजित किया गया था। भुक्ति का प्रधान भोगपति होता था। भुक्ति में 50 से 70 गांव होते थे।

नगर का प्रबंध : नगरों का प्रशासन स्वायत्त प्रणाली के अन्तर्गत संचालित होता था। नगरपति के नेतृत्व में शासन चलाया जाता था।

धार्मिक नीति : राष्ट्रकूट शासक हिंदू धर्म में विश्वास रखते थे। उन्होंने हिंदू देवी देवताओं से संबंधित अनेक मंदिरों का निर्माण करवाया। कृष्ण द्वितीय ने जैन मंदिरों का निर्माण करवाया था। राष्ट्रकूट शासकों के उदार और प्रगतिशील विचारों के संबंध में प्रमाण मिलते हैं।

वित्तीय व्यवस्था : राष्ट्रकूटों की आय का साधन भूमिकर था। जिसे 'उद्रंग' या भोग कर कहा जाता था। यह उपज का प्रायः चौथा भाग होता था। यह कर अनाज के रूप में लिया जाता था।

सैनिक प्रशासन : राष्ट्रकूटों के पास एक विशाल स्थाई सेना थी। उनकी सेना में पैदल, हाथी व घुड़सवार शामिल थे। युद्ध के समय सामन्त भी अपनी सेनाएं भेजकर समय-समय पर राष्ट्रकूट शासकों की सहायता करते थे।

साहित्य एवं कला का विकास : राष्ट्रकूट शासक कला के महान संरक्षक थे। उन्होंने अनेक मंदिरों का निर्माण करवाया था। इनमें से एलोरा में निर्मित कैलाश मंदिर अपनी कला के कारण सुविख्यात है। यह मंदिर एकल चट्टान को काटकर बनाया गया है। इस काल में एलीफैंटा की गुफाओं का भी निर्माण किया गया। इन गुफाओं को देखकर व्यक्ति आज भी चकित रह जाता है।

राष्ट्रकूटों ने अपने दरबार में बहुत से विद्वानों को सरंक्षण दिया हुआ था। अमोघवर्ष स्वयं एक महान विद्वान था। उसने 'कवि राजमार्ग' नामक ग्रंथ की रचना की। इसे कन्नड़ भाषा का एक प्रमुख ग्रंथ माना जाता है। जिनसेन ने राष्ट्रकूटों के संरक्षण में 'आदि पुराण' और 'हरिवंश पुराण' नामक विख्यात ग्रंथों की रचना की। महावीर आचार्य द्वारा रचित 'गणितसार संग्रह', शंकटायन का 'अमोघवर्ष-वृत्ति' और विक्रम भट्ट का 'नलचंपू' नामक ग्रंथ भी बहुत प्रसिद्ध थे। इनके अतिरिक्त उस समय के विख्यात विद्वानों के नाम पम्पा, पोन्ना और रन्ना थे। ये कन्नड़ काव्य के तीन रत्न माने जाते हैं।

चित्र-3.3 कैलाश मन्दिर ऐलोरा, महाराष्ट्र

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रकूट शासकों ने न केवल राजनीतिक क्षेत्रों में बल्कि कला, साहित्य और प्रशासन के क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण विकास किया।

त्रिपक्षीय संघर्ष के परिणाम

कन्नौज के लिए चलने वाला यह लंबा तथा भयंकर संघर्ष तीनों राजवंशों पाल, प्रतिहार तथा राष्ट्रकूटों के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। इस संघर्ष के कारण यह तीनों राजवंश बहुत कमजोर हो गए। यहां तक कि वे अपने-अपने प्रदेशों को भी नियंत्रण में न रख सके। राष्ट्रकूटों के प्रदेशों पर परवर्ती चालुक्यों ने अधिकार कर लिया। प्रतिहार राज्य अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया। बंगाल में पाल वंश का स्थान सेन वंश ने ले लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि कन्नौज के लिए त्रिपक्षीय संघर्ष ने तीनों राजवंशों का पतन कर दिया।

माइंड मैप-विद्यार्थी पुनरावृत्ति करते हुए स्वयं भरें

पाल

शासक

शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में योगदान

प्रतिहार

शासक

योगदान

राष्ट्रकूट

शासक

साहित्यिक योगदान

शासन व्यवस्था

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ जानें, कितना सीखा

सही उत्तर छांटें :

1. त्रिपक्षीय संघर्ष का हिस्सा निम्न मे से कौन-सा वंश नहीं था?

   क) पाल   ख) चोल   ग) राष्ट्रकूट   घ) प्रतिहार

2. विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना .... ने की।

   क) पाल वंश   ख) चोल वंश   ग) राष्ट्रकूट वंश   घ) प्रतिहार वंश

3. गुर्जर-प्रतिहार वंश की उत्पत्ति अग्निकुंड द्वारा .... ने बताई है।

   क) चक्रपाणि ने   ख) संध्याकरनंदी ने   ग) माधव ने   घ) चंदबरदाई ने

4. त्रिपक्षीय संघर्ष निम्नलिखित में से किस साम्राज्य को प्राप्त करने के लिए हुआ?

   क) बंगाल   ख) कन्नौज   ग) उज्जैन   घ) पाटलीपुत्र

5. राष्ट्रकूटों द्वारा प्रान्त (राष्ट्र) के अध्यक्ष को .... कहा जाता था।

   क) राष्ट्रपति   ख) राज्यपाल   ग) महाराजाधिराज   घ) प्रधानमंत्री

रिक्त स्थान की पूर्ति करें :

1. त्रिपक्षीय संघर्ष .... पर अधिकार करने के लिए हुआ था।
2. मिहिरभोज .... वंश के शक्तिशाली शासक थे।
3. संध्याकरनंदी व चक्रपाणि जैसे प्रसिद्ध विद्वान .... शासकों के संरक्षण में कार्य करते थे।
4. त्रिपक्षीय संघर्ष लगभग .... वर्षों तक चला।
5. दन्तिदुर्ग .... वंश से सम्बन्ध रखता था।

मिलान करें :

1. त्रिपक्षीय संघर्ष	क) आदि वराह
2. बौद्धधर्म	ख) वर्तमान तहसील
3. दक्षिण भारत	ग) पाल, प्रतिहार, राष्ट्रकूट
4. भुक्ति	घ) पालवंश
5. मिहिरभोज	ड) राष्ट्रकूट शासक

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

लघु प्रश्न :

1. त्रिपक्षीय संघर्ष में कौन-कौन से वंश थे?
2. मिहिरभोज को दौलतपुर अभिलेख और ग्वालियर अभिलेख में क्या कहा गया है? उन्होंने किस विदेशी आक्रमणकारी को पराजित किया?
3. पाल वंश के शासन काल में कौन-कौन से प्रसिद्ध विद्वान हुए?
4. त्रिपक्षीय संघर्ष में गुर्जर-प्रतिहार वंश के कौन-कौन से शासकों ने भाग लिया?
5. पाल एवं राष्ट्रकूट की शाखाओं की सूची बनाएं।

आइए विचार करें :

1. पाल, प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट वंश के लिए कन्नौज क्यों महत्वपूर्ण था? संक्षेप में व्याख्या करें।
2. "राष्ट्रकूट वंश ने कुशल शासन व्यवस्था बनाई" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? तर्क सहित अपने उत्तर की पुष्टि करें।
3. गुर्जर-प्रतिहार एवं पल्लव शासकों द्वारा कला एवं वास्तुकला के क्षेत्र में किए गए योगदान का तुलनात्मक विश्लेषण करें।
4. "पाल वंश का शिक्षा एवं साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान रहा।" इस कथन को तर्क सहित स्पष्ट करें।
5. कन्नौज संघर्ष के क्या परिणाम रहे? किन्हीं चार बिंदुओं की व्याख्या करें।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ करके देखें

1. भारत के राजनीतिक मानचित्र में प्रतिहारों, राष्ट्रकूटों और पालों द्वारा शासित क्षेत्रों एवं कन्नौज को चिह्नित करें।

कल्पना करें

1. यदि आप त्रिपक्षीय संघर्ष के समय शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्ति होते तो इस संघर्ष को समाप्त करने के लिए क्या करते?

अध्याय - 4

विश्व में भारतीय संस्कृति का प्रसार

आओ जानें

- भारतीय संस्कृति के प्रसार में विभिन्न माध्यमों की भूमिका।
- दक्षिण एशियाई देशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव
- अन्य देशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव।

निम्नलिखित तालिका में यातायात व संचार के साधानों को वर्गीकृत करें

प्राचीन	आधुनिक

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

वैश्वीकरण के इस युग में परिवहन के तीव्रगामी साधनों के परिणामस्वरूप विश्व के किसी भी स्थान पर कुछ ही घंटों में पहुंचा जा सकता है। सैटेलाइट चैनलों जैसे संचार माध्यमों से दुनिया के किसी भी भाग में हुई घटना का सीधा प्रसारण देखा जा सकता है। इंटरनेट के माध्यम से तो मानो पूरी दुनिया हमारी मुट्ठी में आ गई है। हम एक बटन दबाकर कोई भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। विश्व के किसी भी कोने में रहने वाले व्यक्ति से संपर्क स्थापित कर सकते हैं तथा सोशल मीडिया जैसे फेसबुक या वाट्सएप के जरिए विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं।

आज हमें यह सब एकदम सहज और सुगम प्रतीत होता है। लेकिन कल्पना कीजिए कि जब यातायात और संचार के आधुनिक साधन उपलब्ध नहीं थे तब किस प्रकार लोग एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते थे? वे एक दूसरे से कैसे संपर्क स्थापित करते थे? आपको जानकर आश्चर्य होगा कि भारत के प्राचीन काल से ही भारत के विश्व के अन्य देशों के साथ व्यापारिक संबंध बने हुए थे। उस समय भारत पूरे विश्व में अत्यधिक महत्वपूर्ण देश था।

भारत दक्षिण में तीन ओर से समुद्र से घिरा है तथा इसके उत्तर में विशाल हिमालय पर्वत एक ऊंची दीवार के रूप में खड़ा है। ये बाधाएं भी भारत को शेष विश्व के साथ संपर्क स्थापित करने से रोक नहीं पाई। वास्तविकता तो यह है कि हमारे पूर्वजों ने दूर-दूर के स्थानों की यात्राएं की और वहां भारतीय संस्कृति की अमिट छाप छोड़ी है। आज विश्व के विभिन्न भागों विशेष रूप से दक्षिण-पूर्वी एशिया, मध्य एशिया, पूर्वी एशिया यहां तक कि यूरोप में रोम तथा यूनान आदि देशों में भारतीय संस्कृति और सभ्यता की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

शायद यही कारण है कि दक्षिण-पूर्वी एवं दक्षिण एशियाई देशों (वर्तमान भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, म्यांमार, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, मालदीव, थाईलैंड, कंबोडिया वियतनाम, मलेशिया, इंडोनेशिया आदि) के लिए 'इंडीज' शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। 'इंडीज' शब्द भारत की प्रसिद्ध नदी 'सिंधु' (इण्डस) से लिया गया है। यह इस बात का परिचायक है कि इन देशों पर भारतीय संस्कृति का कितना गहरा प्रभाव रहा है। यह बात भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि भारतीयों ने कभी भी अपनी संस्कृति एवं विचारों को किसी पर भी बलपूर्वक थोपने का प्रयास नहीं किया। अन्य देशों के लोगों ने भारत के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को स्वेच्छा से अपनाया और आत्मसात् किया है।

व्यक्तिगत गतिविधि

प्रत्येक दिशा (उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम) से एक राज्य लें, उनकी सांस्कृतिक विविधता के बारे में तुलनात्मक जानकारी एकत्रित कर अपनी पुस्तिका में लिखें।

संकेत - नृत्य शैली, खान-पान, पहनावा, त्योहार इत्यादि।

इस अध्याय में हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार विश्व के विभिन्न भागों में भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ तथा तथ्यों और उदाहरणों के माध्यम से यह समझने का भी प्रयास करेंगे कि इसका वहां की संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ा।

भारतीय संस्कृति के प्रसार में व्यापारियों, विदेशी यात्रियों, धर्मप्रचारकों, राजदूतों तथा विद्वानों की भूमिका

व्यापार :

भारत में प्राचीन काल में काशी, मथुरा, उज्जैन, पाटलिपुत्र आदि अनेक संपन्न नगर तथा भृगुकच्छ, ताम्रलीप्ति, कावेरीपट्टनम, अरिकमेडु आदि विकसित बंदरगाहें स्थित थी। 500 ई. पूर्व के लगभग समुद्री व्यापार के बढ़ने के परिणामस्वरूप इन संपन्न नगरों तथा बंदरगाहों से भारतीय व्यापारी, व्यापार के नए-नए अवसरों की खोज में दूर-दूर देशों की यात्राएं करते थे। ये व्यापारी जहां भी गए, भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों को भी अपने साथ ले गए। उनमें से कुछ व्यापारी तो उन देशों में ही बस गए। इस प्रकार व्यापारियों ने भारतीय वस्तुओं के व्यापार के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के वाहक के रूप में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय विद्वान :

अनेकों भारतीय विद्वानों तथा आचार्यों ने भी अनेकों देशों की यात्राएं की तथा वहां भारतीय संस्कृति की कीर्ति पताका फहराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 67 ई. में चीन के शासक मिंग-ती के निमंत्रण पर कश्यप मार्तंग तथा धर्मरक्षित नामक दो आचार्य चीन की यात्रा पर गए थे। एक अन्य भारतीय आचार्य कुमारजीव जब चीन गए तो वहां के शासक के अनुरोध पर उन्होंने अनेक संस्कृत ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। विक्रमशिला विश्वविद्यालय के प्रमुख आचार्य अतीश (दीपांकर श्रीज्ञान) जब ग्यारहवीं शताब्दी में तिब्बत गए तो उन्होंने वहां बौद्ध धर्म को एक मजबूत आधार प्रदान किया। परिणामस्वरूप अनेक तिब्बतियों ने बौद्ध धर्म को अपना लिया तथा इसे तिब्बत का शासकीय धर्म घोषित कर दिया। आज भी तिब्बत के दलाई लामा बौद्ध धर्म के सबसे प्रमुख नेता हैं।

शैक्षणिक केंद्र :

प्राचीन काल में भारत में नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला, वल्लभी आदि अनेक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे जो न केवल भारतीय अपितु विदेशी छात्रों और विद्वानों के लिए भी आकर्षण का केंद्र थे। विदेशी विद्वान प्रायः नालंदा विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने तथा विभिन्न विषयों का अध्ययन करने आते थे। ऐसा बताया जाता है कि इस विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का भवन सात मंजिला था। ये विद्यार्थी शिक्षा पूर्ण करके जब अपने देश वापस जाते थे तो भारतीय ज्ञान के साथ-साथ भारतीय संस्कृति को भी अपने साथ ले जाते थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपनी भारत यात्रा के विवरण में भारत के दो विश्वविद्यालयों नालंदा और वल्लभी में अपने अनुभवों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार तिब्बत के एक विद्वान तारानाथ ने विक्रमशिला विश्वविद्यालय का वर्णन किया है तथा वहां से प्राप्त ज्ञान का तिब्बत में प्रसार किया है। इस प्रकार शिक्षा के माध्यम से भारत से बाहर भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

धर्म प्रचारक एवं राजदूत :

विदेशों में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के प्रचार-प्रसार में धर्म प्रचारकों एवं राजदूतों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राजा अशोक ने अपने पुत्र महेंद्र तथा पुत्री संघमित्रा को भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार करने के लिए श्रीलंका भेजा था। उनके साथ-साथ अनेक बौद्ध भिक्षु भी वहां गए। ऐसी मान्यता है कि वह बौद्धगया के बोधिवृक्ष की एक टहनी भी अपने साथ श्रीलंका ले गए और उसे वहां रोपित किया। कालांतर में श्रीलंका में बौद्धधर्म इतना लोकप्रिय हो गया कि वहां पर महाविहार तथा अभयगिरी नामक दो बौद्धमठों का निर्माण किया गया। लंबे समय तक श्रीलंका में बौद्ध धर्म वहां का मुख्य धर्म तथा पालि भाषा वहां की साहित्यिक भाषा बनी रही। इसी प्रकार पहली और दूसरी शताब्दी के मध्य भारत और कंबोडिया के बीच सांस्कृतिक संबंधों की जड़ें तब और भी गहरी हो गई जब भारतीय मूल के कौंडिन्य नामक ब्राह्मण ने वहां कौंडिन्य राजवंश की स्थापना की।

विदेशी यात्री : मेगस्थनीज व डायोनिसियस आदि विद्वान मौर्य काल में भारत आए व चीनी यात्री फाह्यान चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में आया। उसने अपनी पुस्तक 'फो-कुओ-की' में भारत की संस्कृति एवं सामाजिक परम्परा का वर्णन किया। ह्वेनसांग हर्षवर्धन के शासन काल में भारत आया और 'सी-यू-की' नामक पुस्तक लिखी। इत्सिंग ने भी भारत की सभ्यता व संस्कृति का वर्णन किया। अतः समय-समय पर काफी विदेशी यात्री भारत आये और भारत की संस्कृति का विश्व में अपने वृतांत के माध्यम से प्रसार किया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

चित्र-4.1 धर्म प्रचारक - महेंद्र तथा संघमित्रा, श्रीलंका में (लोक सभा गैलरी से साभार)

दक्षिण एशियाई देशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

1 **भाषाई प्रभाव :**

विभिन्न देशों की भाषाओं पर भारतीय भाषाओं जैसे संस्कृत, प्राकृत, पालि आदि का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। उदाहरण के रूप में- थाई भाषा में रावण का थोसाकाठा के नाम से उल्लेख मिलता है जो संस्कृत मूल के शब्द 'दसकंठ' का थाई संस्करण है जिसका अर्थ है दस कंठ वाला। इसी प्रकार थाईलैंड के राजा 'भूमिबोल अदुल्यादेज' का नाम संस्कृत शब्द 'अतुल्यतेज' का ही थाई रूप है। बहुत से इंडोनेशियाई लोगों के नामों का उद्गम संस्कृत ही है। उदाहरण के लिए इंडोनेशिया के प्रमुख नेता 'सुकर्णो' तथा उनकी पुत्री का नाम 'मेघावती सुकर्णोपुत्री' है।

विभिन्न स्थानों का नामकरण संस्कृत भाषा में ही किया गया है।

- उदाहरण के लिए लंबे समय तक दक्षिण-पूर्वी एशिया को 'सुवर्णभूमि' या 'सुवर्णद्वीप' के नाम से पुकारा जाता रहा है। थाईलैंड की राजधानी बैंकॉक के एयरपोर्ट का नाम आज भी 'सुवर्णभूमि एयरपोर्ट' ही है।
- इंडोनेशिया की राजधानी 'जकार्ता' संस्कृत शब्द 'जया कृतः' से ही निकला है। इसी प्रकार इंडोनेशिया के 'जावा' का नाम संस्कृत के शब्द यवद्वीप से लिया गया है जिसका शाब्दिक अर्थ है- 'यव' यानि जौ के आकार का द्वीप। वर्तमान में भी विभिन्न स्थानों के नामकरण में संस्कृत भाषा के शब्दों का प्रयोग बहुतायत में किया जाता है। उदाहरण के लिए 1962 में इंडोनेशिया के 'न्यू गिनीज' का नाम बदलकर 'जयापुर' रखा गया। इसी प्रकार आरेंज पर्वत को 'जयविजय' पर्वत कर दिया गया है। इंडोनेशिया के रक्षा मंत्रालय और खेल मंत्रालय को क्रमशः 'युद्ध ग्रह' तथा 'क्रीड़ाभक्ति' जैसे संस्कृत नामों से पुकारा जाता है।
- 1999 में मलेशिया द्वारा अपनी राजकीय सीट का नाम बदलकर 'पुत्रजय' रखा गया है। मलेशिया की राजधानी का नाम है- 'कुआलालंपुर' जो संस्कृत मूल के शब्द 'चोलानामपुरम' यानि 'चोलों का शहर' का ही मलेशियाई संस्करण है। मलेशिया में ही एक पर्वतीय स्थल है जिसका नाम है- 'सुंगेई पट्टनी' जो संस्कृत शब्द 'शृंगपट्टनम' से लिया गया है। ये सभी उदाहरण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि अनेक देशों की भाषाएं भारतीय भाषा संस्कृत से प्रभावित रही हैं।

चित्र-4.2

चित्र-4.3

©BSEH Bhiwani Not to be republished

2

धार्मिक प्रभाव :

भारतीय धर्म प्रचारकों, बौद्ध भिक्षुओं, व्यापारियों तथा विदेशी यात्रियों के माध्यम से विश्व के विभिन्न भागों में हिंदू धर्म एवं बौद्ध धर्म का व्यापक प्रसार हुआ तथा ये वहां की संस्कृति का अभिन्न अंग बन गए। आज भी नेपाल, भूटान, श्रीलंका, तिब्बत, म्यांमार, कम्बोडिया, थाईलैंड, वियतनाम, इंडोनेशिया, मलेशिया यहां तक कि जापान, कोरिया, चीन आदि देशों में हिंदू और बौद्ध धर्म को मानने वाले लोगों की बहुत संख्या है। इन देशों में हिंदू मंदिरों, बौद्ध स्तूपों, रामायण तथा महाभारत जैसे धार्मिक ग्रंथों, जातक कथाओं, भारतीय पौराणिक कथाओं के अनेक प्रसंगों से जुड़े पात्रों व विभिन्न स्थानों का नामकरण तथा भारतीय जीवन पद्धति, रीति-रिवाजों, आध्यात्मिक मूल्यों के प्रमाण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। वर्तमान समय में कनाडा में सिक्ख-समुदाय के प्रभावी होने से गुरुमुखी भाषा को दूसरी राष्ट्रीय भाषा माना गया है।

क

मंदिर

- 'कंबोडिया' में स्थित अंकोरवाट का विष्णु मंदिर विश्व का सबसे बड़ा मंदिर है। यह मंदिर भगवान 'विष्णु' को समर्पित है। इस मंदिर की दीवारों पर रामायण, महाभारत तथा पौराणिक आख्यानों के विभिन्न प्रसंगों का सुंदर चित्रण किया गया है। इनमें सबसे प्रमुख है– 'समुद्र मंथन' का चित्रण। इस मंदिर को यूनेस्को द्वारा विश्व विरासत के रूप में मान्यता दी गई है।

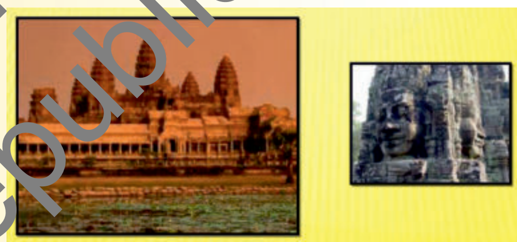

चित्र-4.4 अंकोरवाट मंदिर (कम्बोडिया)

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते हैं?

- अंकोरवाट मंदिर का निर्माण 12वीं शताब्दी की शुरुआत में खमेर राजा सूर्यवर्मन द्वितीय द्वारा अपने राज्य मंदिर के रूप में करवाया गया था।

- इंडोनेशिया के जावा में स्थित 'बोरोबदूर मंदिर' विश्व का सबसे बड़ा बौद्ध मंदिर है। यह मंदिर भगवान बुद्ध को समर्पित बौद्ध धर्म का एक प्रमुख तीर्थ स्थल है जिसे भगवान बुद्ध की विभिन्न मुद्राओं वाली 504 मूर्तियों से सुसज्जित किया गया है। इसे भी यूनेस्को द्वारा विश्व विरासत घोषित किया गया है।

चित्र-4.5 बोरोबदूर मंदिर (इंडोनेशिया)

इंडोनेशिया के जावा में ही 'प्रम्बनन' मंदिर स्थित है जो हिंदू त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) को समर्पित है। तीन देवताओं के मंदिरों के सामने उनके वाहनों क्रमश : हंस, गरुड़ और नंदी के भी मंदिर बनवाए गए हैं। दोनों पंक्तियों के मध्य दुर्गा, गणेश को समर्पित दो मंदिर हैं। इन आठ मुख्य मंदिरों के अतिरिक्त 240 छोटे मंदिर हैं।

- मलेशिया में स्थित 'बातू गुफाएं भारत से बाहर स्थित अत्यंत लोकप्रिय हिंदू मंदिरों में एक मानी जाती हैं जो भगवान 'मुरुगन' (कार्तिकेय) को समर्पित हैं।

- थाईलैंड में स्थित 'एरावन मन्दिर' भारत के राजस्थान में पुष्कर मंदिर के अतिरिक्त भारत से बाहर ब्रह्मा जी का एकमात्र मंदिर है। नेपाल की राजधानी काठमांडू में स्थित 'पशुपतिनाथ' का प्रसिद्ध मंदिर भगवान शिव को समर्पित है।

चित्र-4.6 पशुपतिनाथ मंदिर (काठमांडू)

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पौराणिक पात्र :

ख

विश्व के अनेक देशों में सनातन धर्म ग्रंथों और पुराणों से संबंधित विभिन्न पात्रों को विशेष महत्त्व दिया गया है जो वहां के जनमानस के अवचेतन में भारतीय संस्कृति की गहरी छाप का स्पष्ट प्रमाण है।

चित्र-4.7 कम्बोडिया का राष्ट्रीय ध्वज

- कम्बोडिया के राष्ट्रीय ध्वज पर 'अंकोरवाट मंदिर' की प्रतिकृति अंकित है।

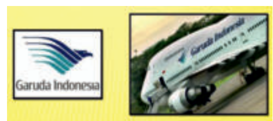

चित्र-4.8 इंडोनेशिया की राष्ट्रीय विमान सेवा

- इंडोनेशिया की राष्ट्रीय विमान सेवा का नाम भगवान विष्णु के वाहन के नाम पर 'गरुड़ इंडोनेशिया' रखा गया है।

चित्र-4.9 इंडोनेशिया के करेंसी नोटों पर भगवान गणेश का चित्र

- इंडोनेशिया के करेंसी नोटों पर भगवान गणेश का चित्र अंकित है तथा वहां के राष्ट्रपति भवन के मुख्य द्वार पर भी गणेश जी की प्रतिमा को स्थापित किया गया है।

- 'बैंकॉक वर्ल्ड ट्रेड सेंटर' के बाहर एक शानदार मंदिर का निर्माण किया गया है जिसमें भगवान गणेश की सुंदर प्रतिमा स्थापित की गई है।

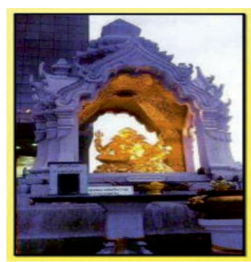

चित्र-4.10 भगवान गणेश की सुंदर प्रतिमा

- मलेशिया में सेना प्रमुख को 'लक्ष्मण' कहा जाता है जो राम-रावण युद्ध में भगवान श्रीराम की विजय में उनके छोटे भाई लक्ष्मण की महत्त्वपूर्ण भूमिका से प्रेरित है।

ग

भारतीय पौराणिक स्थानों के नाम पर विभिन्न स्थानों का नामकरण

- थाईलैंड में भगवान श्रीराम की जन्मभूमि 'अयोध्या' के नाम से मिलते-जुलते नाम वाले एक शहर 'अयुथिया' के अवशेष मिले हैं।

चित्र-4.11 अयुथिया

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

मानचित्र-4.2 दक्षिण-पूर्वी एशिया

- इंडोनेशिया के शहर 'मदुरा' का नाम भगवान कृष्ण की जन्मभूमि 'मथुरा' अथवा दक्षिण भारत के प्रमुख नगर 'मदुरै' से मिलता-जुलता है।

अन्य देशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

चीन, जापान, कोरिया एवं अरब देशों में भी भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ तथा वहां की संस्कृति में हमें इसकी स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

- कांचीपुरम के एक विद्वान बोधिधर्म के माध्यम से भारतीय योग और ध्यान की विधि चीन पहुंची जो वहां पर 'चॉन' के नाम से लोकप्रिय हुई। चौथी शताब्दी में 'वी' राजवंश के प्रथम शासक सम्राट 'डाऊन' ने बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर इसे चीन का राजकीय धर्म घोषित कर दिया। परिणामस्वरूप चीन में बौद्ध धर्म लोकप्रिय हो गया।

चीन के उत्तर-पूर्व स्थित देश कोरिया में भी बौद्ध धर्म चीन के रास्ते पहुंचा। 352 ई. में 'सनदो' नामक बौद्ध भिक्षु भगवान बुद्ध की प्रतिमा तथा उनके सूत्र लेकर कोरिया गया। 404 ई. में कोरिया के प्रोंग्यांग शहर में दो बौद्ध मंदिरों का निर्माण हुआ। आठवीं और नौवीं शताब्दी में चीन के ही रास्ते 'ध्यान योग' की पद्धति कोरिया पहुंची तथा वहां के राजाओं, रानियों, राजकुमारों, मंत्रियों यहां तक कि योद्धाओं ने भी एकाग्रता, निडरता एवं वीरता जैसे गुणों का विकास करने के लिए बड़े पैमाने पर इसका प्रशिक्षण प्राप्त किया। कोरिया में बौद्ध ग्रंथों को छापा गया।

- जापान में भारतीय संस्कृति के सबसे पहले प्रमाण 552 ई. के आसपास मिलते हैं जब कोरिया के सम्राट ने जापान के सम्राट को भगवान बुद्ध की प्रतिमा, उनके सूत्र, पूजा यंत्र भेंट के रूप में भेजे। जल्द ही हजारों की संख्या में जापानी लोग बौद्ध भिक्षु बन गए और बौद्ध धर्म को जापान में राजकीय धर्म का दर्जा दे दिया। संस्कृत को जापान में पवित्र भाषा के रूप में मान्यता मिली और बौद्ध भिक्षु संस्कृत के वर्णों और मंत्रों को लिखने का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे। इन्होंने जिस लिपि का प्रयोग किया उसे 'सित्तन' के नाम से जाना जाता है जो संस्कृत मूल के शब्द 'सिद्धम' का जापानी संस्करण माना जाता है यानि ऐसी लिपि जो 'सिद्धि' प्रदान करे।

- हिमालय के उत्तर में स्थित तिब्बत, बौद्ध धर्म का प्रमुख केंद्र है। सातवीं शताब्दी में तिब्बत के शासक नारदेव ने अपने मंत्री 'थोनमी संभोत' को 16 विद्वानों के साथ मगध भेजा। जहां उन्होंने भारतीय आचार्यों से शिक्षा ग्रहण की तथा तिब्बत में एक नई लिपि का प्रतिपादन किया जो भारत की 'ब्राह्मी लिपि' के वर्णों

क्या आप जानते हैं?
नालंदा, प्रमबनन मंदिर, बोरोबदूर मंदिर व अंकोरवाट मंदिर को यूनेस्को ने विश्व धरोहर घोषित किया है।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पर आधारित थी। उसने पाणिनी के संस्कृत व्याकरण के आधार पर एक नए व्याकरण की भी रचना की जिसके बाद अनेक संस्कृत ग्रंथों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया।

- अरब देशों के साथ भारत के व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंधों का इतिहास अत्यंत प्राचीन है क्योंकि भारत और अरब देश स्थल और समुद्री दोनों मार्गों से जुड़े हुए थे। खगोल विज्ञान का प्रसिद्ध ग्रंथ 'ब्रह्म-स्फुट-सिद्धांत' अरब देशों में 'सिंधिंन' के नाम से जाना जाता था। भारतीय गणित को अरब देशों में 'हिंदिसा' यानि 'हिन्द से लिया गया' के नाम से पुकारा जाता था। भारतीय दशमलव प्रणाली और शून्य का सिद्धांत अरब लोगों ने भारतीयों के संपर्क से ही सीखा था। भारतीय चिकित्सा पद्धति पर आधारित अनेक ग्रंथों का अरबी भाषा में अनुवाद किया गया।

इस प्रकार हमने देखा कि भारतीय संस्कृति, सभ्यता, ज्ञान, दर्शन, धर्म एवं भाषा का विभिन्न देशों की संस्कृतियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। हजारों वर्ष बीत जाने के उपरांत भी इन देशों में भारतीय संस्कृति की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। यह न केवल हमारी संस्कृति की उत्कृष्टता का परिचायक है बल्कि भारतीय जीवन पद्धति का मुख्य आधार 'वसुधैव कुटुंबकम्' के सिद्धांत का भी जीवंत उदाहरण है।

माइंड मैप - याद रखने योग्य बिंदु

- प्राचीन काल से ही विभिन्न माध्यमों से भारतीय संस्कृति का विश्व के अनेक भागों में प्रसार हुआ।
- अनेक संस्कृत ग्रंथों का विभिन्न देशों की भाषाओं में अनुवाद किया गया।
- भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर अनेक देशों में हिंदू तथा बौद्ध मंदिरों का निर्माण हुआ।
- प्राचीन काल से ही भारत शिक्षा का प्रमुख केंद्र था और यहां के शिक्षण संस्थान अपने उच्च शैक्षिक मानदंडों के कारण विदेशी विद्यार्थियों के लिए आकर्षण का केंद्र रहे।
- 'रामायण', 'महाभारत' जैसे ग्रंथ अनेक देशों में अत्यंत लोकप्रिय हुए।
- भारतीय भाषा 'संस्कृत' तथा भारतीय लिपि 'ब्राह्मी' का अनेक देशों की भाषाओं और लिपियों पर गहरा प्रभाव पड़ा।
- विदेशी विद्यार्थी भारतीय संस्कृति के वाहक बने।
- अनेक देशों में हिन्दू तथा बौद्ध धर्म को प्रमुख धर्म के रूप में मान्यता प्राप्त हुई।
- भारतीय खगोल विज्ञान, गणित, चिकित्सा-पद्धति, योग-ध्यान आदि का विश्व के कोने-कोने में प्रसार हुआ।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ जानें, कितना सीखा

सही उत्तर छांटें :

1. निम्नलिखित प्राचीन विश्वविद्यालयों में से कौनसा विश्वविद्यालय आज के समय भारतीय भू-भाग में स्थित नहीं है।
   क) नालन्दा ख) तक्षशिला ग) वल्लभी घ) विक्रमशिला

2. .... ई. में चीन के शासक मिंग -ती के निमंत्रण पर कश्यप मार्तंग तथा धर्मरक्षित नामक दो आचार्य चीन की यात्रा पर गए थे।
   क) 67 ख) 60 ग) 06 घ) 76

3. इंडीज शब्द भारत की .... नदी से लिया गया है।
   क) गंगा ख) यमुना ग) सिंधु घ) इन में से कोई नहीं

4. महाविहार और अभयगिरी नामक बौद्ध मठ .... देश में बनवाये गए।
   क) चीन ख) कम्बोडिया ग) श्रीलंका घ) भारत

5. निम्नलिखित में से किस मंदिर की दीवारों पर रामायण, महाभारत और पौराणिक आख्यानों के विभिन्न प्रसंगों का सुंदर चित्रण किया गया है।
   क) एरावन ख) अंकोरवाट ग) पशुपति नाथ घ) आतशगाह

रिक्त स्थान की पूर्ति करें :

1. कम्बोडिया में स्थित अंकोरवाट मंदिर .... देवता को समर्पित है।
2. मलेशिया में सभा प्रमुख को .... कहा जाता है।
3. राजा अशोक ने अपने पुत्र .... तथा पुत्री .... को भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार करने श्रीलंका भेजा।
4. भारतीय गणित को अरब देशों में .... के नाम से जाना जाता है।

मिलान करें :

1. ह्वेनसांग	क) विकसित बंदरगाह
2. भृगुकच्छ	ख) बौद्ध धर्म के प्रमुख नेता
3. दलाई लामा	ग) राजा अशोक की पुत्री
4. संगेई पटनी	घ) चीनी यात्री
5. संघमित्रा	ड) मलेशिया में एक पर्वतीय स्थल

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

निम्नलिखित कथनों में सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाओ :

1. 1962 में इंडोनेशिया के न्यू गिनीज का नाम बदलकर जयापुर रखा गया। ( )
2. कौंडिन्य नामक ब्राह्मण ने श्रीलंका में कौंडिन्य राजवंश की स्थापना की। ( )
3. जावा में स्थित बोरोबदूर मंदिर विश्व का सबसे बड़ा बौद्ध मंदिर है। ( )
4. भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर अनेक देशों में हिन्दू तथा जैन मंदिरों का निर्माण हुआ। ( )
5. सातवीं शताब्दी में तिब्बत के शासक नारदेव थे। ( )

लघु प्रश्न :

1. ध्यान योग की पद्धति कब और कैसे कोरिया पहुंची?
2. खगोल ज्ञान का प्रसिद्ध ग्रंथ कौन-सा है? इसे अरब देशों में किस नाम से जाना जाता है?
3. भारतीय जीवन पद्धति का मुख्य आधार क्या है?
4. बौद्ध धर्म को चीन का राजकीय धर्म कब और किसने घोषित किया था?
5. किस देश में करेंसी नोटों पर गणेशजी की मूर्ति अंकित है?

आइए विचार करें :

1. नालंदा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की विशेषताएं क्या थीं?
2. "व्यापारियों ने भारतीय वस्तुओं के व्यापार के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के वाहक के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई" कथन को स्पष्ट करें।
3. "इंडोनेशिया पर भारतीय संस्कृति का गहरा प्रभाव है।" इस कथन की उदाहरण सहित पुष्टि करें।
4. अंकोरवाट मंदिर के बारे में विश्लेषणात्मक टिप्पणी करें।
5. "जापान पर भारतीय संस्कृति का धार्मिक प्रभाव पड़ा।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? उदाहरण सहित पुष्टि करें।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ करके देखें

1. पाठ में आए विभिन्न देशों को विश्व के राजनीतिक मानचित्र पर दर्शाएं।

कल्पना करें

1. अगर आप को विदेश जाने का मौका मिले और वहां आप किसी ऐतिहासिक मंदिर या किसी स्थान का नाम जानें जो भारतीय संस्कृति से प्रभावित हो तो आप कैसा महसूस करेंगे।

अध्याय - 5

प्राचीन भारत में शिक्षा, साहित्य एवं कला

आओ जानें

- प्राचीन भारत में शिक्षा
- प्राचीन भारत में साहित्य
- प्राचीन भारत में कला

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

प्राचीन भारत में शिक्षा

चित्र-5.1

विश्व का सबसे प्राचीनतम ग्रंथ वेद हैं। वेदों के आधार पर दी जाने वाली शिक्षा को वैदिक शिक्षा कहा जाता है। प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में मुख्यत: वेद, ऋग्वेद, उपनिषद, निरुक्त, वेदांगों द्वारा विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती थी। इस शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थियों को गुरुओं के घर रहकर शिक्षा लेनी होती थी। बाद में गुरुकुलों का निर्माण हुआ और विद्यार्थी जंगलों में गुरुओं के आश्रम में बैठकर शिक्षा ग्रहण करने लगे। तीन दिन की परीक्षा के बाद विद्यार्थी का 'उपनयन संस्कार' होता था। सभी विद्यार्थियों को समान रूप से शिक्षा दी जाती थी।

प्राचीन शिक्षा प्रारूप : शिक्षा में कठोर अनुशासन होता था। पाठों के उच्चारण पर बल दिया जाता था। वैदिक मंत्रों का जाप शुद्ध उच्चारण से किया जाता था। स्वाध्याय व प्रवचन-वैदिक शिक्षा के मूल अंग थे। शिक्षा विद्यार्थी को आंतरिक व बाहरी रूप से मजबूत बनाती थी। विद्यार्थी के मन की चंचलता को वश में करना, चित्तवृत्तियों का शोधन, राष्ट्र के प्रति प्रेम, परहित चिंतन, माता-पिता और गुरुजनों का सम्मान करना ही इस शिक्षा का मूल उद्देश्य था। प्राचीन शिक्षा 'त्याग मूलक' संस्कृति को पोषित करती थी। शिक्षा में मोक्ष-द्वार के लिए यज्ञ, अध्ययन और दान को मुख्य माना गया। जीवन व्यवस्था

- **ग्रन्थ** - पुस्तक मुख्यत: धार्मिक एवं ऐतिहासिक।
- **गुरुकुल** - ऐसा विद्यालय या आश्रम जहा शिष्य गुरु के परिवार के साथ रहकर शिक्षा प्राप्त करता है।
- **देशाटन** - देश भ्रमण।
- **उपनयन संस्कार** - शिक्षा प्राप्त करने से पहले होने वाला संस्कार।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

को ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ तथा संन्यास के आधार पर बांटा गया था। वैदिक शिक्षा में लोक और परलोक, जीवन की समस्याएं, आत्मा परमात्मा का ज्ञान, देशाटन, चरित्र-निर्माण, दूसरों की भावनाओं का आदर आदि गूढ़ विषयों के मार्ग को जाना जाता था। विद्यार्थी के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास, व्यापक दृष्टिकोण एवं सकारात्मक पहलुओं पर जोर दिया जाता था। विद्यार्थी गुरुओं के सान्निध्य में अंतेवासी (नजदीक) होकर शिक्षा ग्रहण करता था एवं व्यवसायगत शिक्षा का प्रचलन भी था।

चित्र-5.2 गुरुकुल

प्राचीन शिक्षण पद्धति की विशेषताएं : प्राचीन काल में अभ्यास की प्रक्रिया में आचार्य का विशिष्ट स्थान होता था। आचार्य को 'देवत्व' की उपाधि प्राप्त थी। गुरु शिष्य में व्यक्तिगत संबंध होता था। शिष्य गुरु के कुल का सदस्य बनकर रहता था। शिक्षण मौखिक था। पुस्तकों की सहायता सदा नहीं ली जाती थी। वेदों का अध्ययन व अध्यापन कई रूपों में होता था। शिक्षण के अभ्यास में विशेष तौर पर उच्चारण पर ध्यान दिया जाता था। अवकाश मुख्य रूप से प्रतिपदा, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा अमावस्या को निर्धारित किए गए थे। आकस्मिक घटनाओं जैसे उपद्रव, आक्रमण, लूटमार, दुर्घटना, दैवी आपत्ति पर भी अवकाश होता था।

वेदाध्ययन का तात्पर्य केवल मंत्रों को याद करना ही नहीं बल्कि उनके अर्थों को समझना भी था। अनुशासन कठोर था, संवेगों व इच्छाओं पर संयम रखा जाता था। अध्ययन के लिए कोई शुल्क नहीं होता था। वैदिक संस्कृति की रक्षा करना व उसको बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास होता था। विद्यार्थी के नैतिक उत्थान के लिए आध्यात्मिक वातावरण तैयार किया जाता था, जैसे यज्ञ आदि करना। विद्यार्थी के मन, वचन एवं कर्म की शुद्धता पर बल दिया जाता था। शिक्षा की समाप्ति पर समावर्तन संस्कार किया जाता था।

प्राचीन काल में स्त्री शिक्षा : वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में स्त्रियों की शिक्षा की भी अच्छी व्यवस्था थी। उनका भी उपनयन होता था। वे भी उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं। उच्च शिक्षा के कारण ही ऋग्वेद में स्त्री को ब्रह्मा कहा गया है। ज्ञान प्राप्ति के बाद (कन्याओं को) काव्य कला, शस्त्र विद्या, ललित कलाओं, संगीत, नृत्य, अभिनय आदि की शिक्षा देने की भी व्यवस्था थी। नृत्य, गायन व नृत्य कला में पारंगत स्त्री को 'विशारद' कहा जाता था। उपनिषदों में आदर्श नारियों का वर्णन भी खूब आता है। मैत्रेयी (याज्ञवल्क्य ऋषि की पत्नी), भारती (मंडन मिश्र की पत्नी), गार्गी आदि। लेकिन वैदिक काल के बाद स्त्री शिक्षा में कमी आई।

ज्ञात करें

- मुख्यत: संस्कारों के कितने प्रकार हैं?
- वर्तमान में विद्यार्थियों को शिक्षित करने के लिए किन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

सैन्य शिक्षा : अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र रक्षा के लिए सैन्य शिक्षा दी जानी अनिवार्य है। सामान्य रूप से क्षत्रियों को ही सैन्य शिक्षा दी जाती थी। राष्ट्र की रक्षा का उत्तरदायित्व उन्हीं का होता था।

प्राचीन काल में शिक्षा के प्रमुख केन्द्र

नालंदा विश्वविद्यालय : यह पटना के राजगृह नामक जिले में स्थित था। इस विश्वविद्यालय की स्थापना कुमारगुप्त ने की थी। ह्वेनसांग ने भी दो वर्ष तक यहां शिक्षा ग्रहण की थी।

- यहां दस हजार विद्यार्थी तथा 1510 शिक्षक कार्यरत थे।
- यह आवासीय विश्वविद्यालय था।
- इसमें केवल भारत से ही नहीं बल्कि चीन, भूटान, नेपाल, जापान, श्रीलंका, तिब्बत आदि से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे।
- नालंदा विश्वविद्यालय में भाषा, व्याकरण, राजनीति शास्त्र, धर्मशास्त्र, विज्ञान, गणित, दर्शन आदि विषय पढ़ाए जाते थे। अतः शिक्षण केंद्रो के प्रति राजा हर्षवर्धन हमेशा सचेत रहते थे।

तक्षशिला विश्वविद्यालय : यह भारत का सबसे प्राचीन विश्वविद्यालय है जो वर्तमान पाकिस्तान के रावलपिंडी के निकट जोलिया तथा पीपला गांव के पास स्थित है। इस स्थान का विवरण अनेक प्राचीन ग्रंथों महाभारत, रामायण आदि में भी मिलता है परंतु इसे शिक्षा के केंद्र के रूप में सातवीं शताब्दी के पूर्व में स्थान मिला। यह राजगृह, बनारस और उज्जैन जैसे दूर-दूर के विद्यार्थियों को आकर्षित करता था। बाद में शक,हूण आक्रमणों के कारण यह विश्वविद्यालय समाप्त हो गया परंतु इसके अवशेष दर्शाते हैं कि यह उच्च श्रेणी का विश्वविद्यालय तथा संस्कृति का केंद्र था। यहां धर्म से संबंधित साहित्य, अर्थशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र पर अनेक ग्रन्थ लिखे गए थे। महात्मा बुद्ध का इलाज करने वाले जीवक नामक चिकित्सक ने सात वर्ष तक यही शिक्षा अर्जित की थी। यहां वेद, वेदांत, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष शास्त्र, चिकित्सा शिक्षा और कृषि की शिक्षा दी जाती थी। यहां अध्ययन करने वाले व्यक्तियों में मुख्यतः पाणिनी, चाणक्य, जीवक आदि शामिल है इसमें प्रवेश के लिए प्रवेश परीक्षा होती थी।

वल्लभी विश्वविद्यालय : यह विश्वविद्यालय नालंदा विश्वविद्यालय की तरह ही था जो गुजरात के काठियावाड़ में स्थित था। यह वर्तमान भावनगर जिले में स्थित है। गुजरात में मैत्रक वंश का राज्य पांचवीं से आठवीं शताब्दी तक रहा। इसी वंश के सेनापति भट्टारक ने 470 ई. में इस विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग तथा ईत्सिंग ने भी इस शिक्षा केंद्र का विस्तार से वर्णन किया है। ईत्सिंग यहां तीन वर्ष तक रहा भी था। ह्वेनसांग के अनुसार यह विश्वविद्यालय नालंदा के समान ही प्रसिद्ध था। वल्लभी भी दूर-दूर से विद्वानों को आकर्षित था और यहां पढ़े हुए व्यक्ति सारे देश में सम्मान से देखे जाते थे। इस विश्वविद्यालय में अनेक विषयों का अध्ययन होत था विशेषतः कानून, अर्थशास्त्र, गणित और साहित्य इसमें अनेक विहारों का निर्माण भी करवाया था। इस विश्वविद्यालय के पास ही मैत्रेयों की राजधानी और बंदरगाह भी थी। यह 775 ई. तक चलता रहा। इसी समय अरबों के आक्रमण आरंभ हो गए और इसका पतन भी आरंभ हो गया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

विक्रमशिला विश्वविद्यालय : यह वर्तमान बिहार के भागलपुर जिले में स्थित था। इसकी स्थापना पाल वंश के शासक धर्मपाल ने (780 ई. - 810 ई.) करवाई थी। इस राजा ने अनेक बौद्ध मंदिर और विहारों की स्थापना भी की थी। इनमें अध्ययन-अध्यापन कार्य होता था। इस विश्वविद्यालय ने अपनी विशेषताओं के कारण अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की थी। तिब्बत के लोग बड़ी संख्या में अध्ययन करने के लिए आते थे और वापस जाकर बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त होते थे। चीन के राजा के अनुरोध पर यहां से दीपंकरश्रीज्ञान नामक विद्वान को चीन भेजा गया था। विश्वविद्यालय का प्रशासन महास्थविर चलाते थे वही उसके कुलपति हुआ करते थे। अध्यापक सादा जीवन और उच्च विचार वाले व्यक्ति होते थे। यहां व्याकरण, दर्शन, कर्मकांड आदि का विशेष अध्ययन कराया जाता था परंतु बाद में यहां तंत्र-मंत्र का अध्ययन होने लगा जो इस विश्वविद्यालय के पतन का कारण भी बना।

कांचीपुरम विश्वविद्यालय : यह कांचीपुरम में स्थित था। कांची दक्षिण भारत का प्रसिद्ध नगर, शिक्षा केंद्र और पल्लव राजाओं की राजधानी था। यहां हिंदू एवं बौद्ध दोनों ही धर्मों की शिक्षा विभिन्न केंद्रों में दी जाती थी। धर्मों के अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ तर्कशास्त्र, न्याय शास्त्र और व्याकरण साहित्य की शिक्षा दी जाती थी। न्याय भाष्य के प्रसिद्ध रचयिता वात्स्यायन कांची के आचार्य रहे थे। दिग्नाग ने भी इसी स्थान पर विद्या प्राप्त की थी। पांचवीं सदी के कदम्ब वंश के शासक मयूर शर्मा ने यहीं पर अध्ययन किया था। चीनी यात्री ह्वेनसांग कांची में काफी समय रहा था। उसके अनुसार कांची वैष्णव, जैन और बोद्ध संप्रदाय की महायान शाखा का भी केन्द्र था।

प्राचीन भारत में साहित्य

प्राचीन भारतीय साहित्य में हिन्दू, बौद्ध तथा जैन साहित्य की रचना हुई। इसके अतिरिक्त लौकिक साहित्य भी बड़ी मात्रा में पाया गया।

- हिन्दू साहित्य में चार वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, धर्म सूत्र, स्मृतियां, रामायण, महाभारत, 18 पुराण आदि हैं।
- बौद्ध साहित्य में त्रिपिटक, दीपवंश, महावंश, बुद्ध चरित तथा जातक कथाएं प्रमुख हैं।
- जैन साहित्य में 10 अंग, 10 उपांग, प्रकीर्ण ग्रन्थ एवं पद्म पुराण आदि हैं।
- लौकिक साहित्य मे कौटिल्य, विशाखादत्त, कालिदास, शूद्रक, दण्डी, विष्णु शर्मा, पाणिनि, पतंजलि, भरतमुनि, बाण, हर्ष आदि की रचनाएं हैं।

प्राचीन भारत में कला

कला का अर्थ : मनुष्य की रचना जो उसके जीवन में आनंद प्रदान करती है, वह 'कला' कहलाती है। भारतीय कला दर्शन है। ऋग्वेद में भी कला शब्द का वर्णन मिलता है। प्रथम शताब्दी में भरतमुनि ने अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में इसका वर्णन किया है। कला का वास्तविक अर्थ है-प्रेरित करना। सुंदर, मधुर, कोमल और सुख देने वाला शिल्प कौशल, कला कहलाता है।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

दंत कला

धातु कला

धातु कला

मुद्रा कला

चित्र-5.3 - 5.10

कला के प्रकार

- वास्तुकला या स्थापत्य कला : इस कला में भवन निर्माण, दुर्ग, मंदिर तथा स्तूप इत्यादि आते हैं।
- मूर्तिकला : इसमें पत्थर व धातु से मूर्ति बनाई जाती है।
- चित्रकला : इसमें भवन की दीवारों, छतों, भोजपत्रों व कागज पर अंकित चित्र आते हैं।
- मृद भाण्ड कला : इस कला में मिट्टी के बर्तन आते हैं।
- मुद्रा कला : इसमें सिक्कों पर अंकित मोहरें आती हैं।
- पाषाण कला : पत्थर से बनाई गई मूर्तियां इसमें आती हैं।
- धातु कला : इसमें कांस्य, तांबा अथवा पीतल से बनी मूर्तियां आती हैं।
- दंत कला : इसमें हाथी के दांतों से निर्मित कलाकृतियां आती हैं।
- मृत्तिका कला : इसमें मिट्टी से बने खिलौने एवं आकृतियां आती हैं।
- उत्कीर्ण कला या भास्कर्य कला : इस कला में पत्थर, चट्टान, धातु अथवा लकड़ी के फलक पर उकेरकर रूपांकन किया जाता है।
- ललित कला : ललित कला सौंदर्य प्रधान है। इसमें स्थापत्य, मूर्ति, चित्र, संगीत तथा काव्य कला मानी जाती हैं।

मुद्रा कला

मूर्तिकला

उत्कीर्ण कला

दंत कला

सामूहिक गतिविधि

आज की प्रचलित कलाओं के चित्र एकत्रित कर उनका कोलॉज बनाएं।

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

कला अध्ययन के स्रोत : कला को जानने के लिए शिलालेख, ऐतिहासिक ग्रंथ, प्राचीन खंडहर, मोहरें व मुद्राएं, यात्रियों के वृत्तांत व राजाओं द्वारा लिखी गई आत्मकथाएं ही संबल होती हैं। इनके द्वारा ही इस कला की विशेषताओं का पता चलता है।

- **शिलालेख - पत्थरों पर खोदे गए लेख**
- **खंडहर - गिरी हुई इमारतों के अवशेष**
- **यात्रियों के वृत्तांत - यात्रियों द्वारा लिखे गए विवरण**

प्रागैतिहासिक कला : पाषाण युग का मनुष्य प्रकृति द्वारा बनाई गई गुफाओं में रहता था। वह पत्थर, लकड़ी, जानवरों की हड्डियों से हथियार बनाता था।

चित्र-5.11 प्रागैतिहासिक काल की कला

सरस्वती-सिंधु सभ्यता की कला : इस सभ्यता के लोग काली व लाल पकाई मिट्टी के बर्तन बनाने में माहिर थे। इसके अलावा मातृदेवी की मूर्तियां, वनस्पति, पशु-पक्षियों के चित्र, मछली व बारहसिंगे का चित्र बनाते थे। इस सभ्यता में बड़े-बड़े स्नानघर, अनाज भंडार, मिट्टी के बर्तन खिलौने व मोहरें प्राप्त हुई हैं।

चित्र-5.12 सरस्वती-सिंधु सभ्यता की कला

अजन्ता की कला : बौद्ध काल की महान थाती (धरोहर) अजंता को माना जाता है जो महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं व जातक कथाओं पर आधारित है। अजंता के तीस गुफा मन्दिर पहाड़ियों को काटकर बनाए गए हैं। ये गुफाएं मूर्तिकला, वास्तुकला व चित्रकला का उत्तम संगम है।

चित्र-5.13 अजन्ता की कला

बाघ की गुफाएं : भारतीय चित्र परम्परा को अजंता के बाद बाघ की कला में देखा जा सकता है। बाघ की गुफाएं गुप्तकाल के श्रेष्ठतम उदाहरणों में से है। इनकी चित्र शैली का आधार अजंता शैली है। बाघ गुफाओं की कुल संख्या नौ है जो सभी विहार गुफाएं हैं।

गुप्तकालीन कला : गुप्तकाल धार्मिक सहिष्णुता का काल था। वासुदेव सम्प्रदाय से कृष्ण और बलराम की पूजा हुई। हिन्दू देवी-देवताओं का सुरुचिपूर्ण अंकन गुप्त काल में ही हुआ। कृष्ण को विष्णु का अवतार मानने से विष्णु की प्रतिमाओं का भी अंकन हुआ। इसी काल में बड़े-बड़े मन्दिर बनने शुरू हुए।

चित्र-5.14 गुप्तकालीन कला

जैन गुफाएं : ये गुफाएं एलोरा गुफा श्रृंखला के अन्तिम छोर पर एक साथ बनी हैं। इन गुफाओं की दीवारों पर पार्श्वनाथ और महावीर तीर्थंकरों की मूर्तियां बनी हैं। इसके अतिरिक्त बाहुबली गोम्मतेश्वर का अंकन विशेष लोकप्रिय है।

नटराज की मूर्ति : चिंगलेपुट जिले के कुरम से प्राप्त नटराज की प्रतिमा दक्षिण भारतीय चोलवंश के आरम्भिक काल की है। यह प्रतिमा राजकीय संग्रहालय मद्रास में सुरक्षित है। तांबे से निर्मित नटराज की यह मूर्ति बोस्टन संग्रहालय में सुरक्षित है।

चित्र-5.15 ऐलोरा की गुफाएं

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

ऐलोरा की गुफाएं : ऐलोरा गुफाएं महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में है। राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम के काल में ऐलोरा के विश्व प्रसिद्ध कैलाश मंदिर का निर्माण हुआ था। यह मन्दिर पहाड़ों को काटकर बनाया गया। इन मंदिरों के किनारे-किनारे विशाल हाथियों की पंक्तियां बनी हैं।

स्थापत्य कला या वास्तुकला : यह कला तर्क, बुद्धि, विज्ञान और तकनीक के मिश्रण की वास्तुकला कहलाती थी। इस प्राचीन कला में भवनों की दशा व दिशाओं का बोध होता था। इस कला में बुद्धि का प्रकृति व रुचि के साथ तालमेल बिठाकर भवनों आदि का निर्माण किया जाता था। आधुनिक युग में यह कला अपने उत्कर्ष (चरम) पर है।

माइंड मैप

कला

कला के प्रकार

-वास्तुकला या स्थापत्य कला
-मूर्तिकला
-चित्रकला
-मृद भाण्ड कला
-मुद्रा कला
-पत्थर कला
-धातु कला
-दन्त कला
-मूर्ति कला
-उत्कीर्ण कला
-ललित कला

कला अध्ययन के स्रोत

-शिलालेख
-ऐतिहासिक ग्रन्थ
-प्राचीन खण्डहर
-मोहरें व मुद्राएं
-यात्रियों के वृत्तान्त
-राजाओं की आत्मकथाएं

विभिन्न काल खण्ड में कलाएं

-प्रागैतिहासिक कला
-सरस्वती-सिंधु सभ्यता की कला
-अजन्ता की कला
-गुप्तकालीन कला
-जैन गुफाएं
-नटराज की मूर्ति
-ऐलोरा की गुफाएं
-स्थापत्य कला

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ जानें, कितना सीखा

सही उत्तर छांटें :

1. अजंता, ऐलोरा एवं जैन गुफाएं .... राज्य में स्थित हैं।

   क) मध्य प्रदेश ख) महाराष्ट्र ग) पंजाब घ) कर्नाटक

2. नाटक शास्त्र ग्रंथ के रचयिता हैं।

   क) भरत मुनि ख) ऋषि पतंजलि ग) कपिल मुनि घ) ऋषि कणाद

3. नृत्य, गायन व नृत्य कला में पारंगत स्त्री को .... कहा जाता था।

   क) नर्तकी ख) विशारद ग) दोनों क और ख घ) इन में से कोई नहीं

4. प्रकीर्ण ग्रंथ .... साहित्य है।

   क) हिन्दू ख) बौद्ध ग) जैन घ) लौकिक

5. शिक्षा की समाप्ति पर होने वाला संस्कार है:

   क) उपनयन ख) नामकरण ग) समावर्तन घ) मुंडन

रिक्त स्थान की पूर्ति करें :

1. वैदिक शिक्षा के मूल अंग .... और .... हैं।
2. सरस्वती-सिंधु सभ्यता के लोग .... पकाई मिट्टी के बर्तन बनाने में माहिर थे।
3. नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना .... ने की थी।
4. प्राचीन भारतीय साहित्य में ...., ... और .... धर्मों का साहित्य है।
5. स्थापत्य कला या वास्तुकला ...., ... और .... के मिश्रण की कला कहलाती थी।

मिलान करें :

1. उपनयन संस्कार	क) पाल वंश के शासक धर्मपाल
2. वल्लभी विश्वविद्यालय	ख) बौद्ध साहित्य
3. जातक कथा	ग) हाथी दांत से निर्मित कलाकृतियां
4. दंत कला	घ) शिक्षा प्राप्त करने से पहले होने वाला संस्कार
5. विक्रमशिला विश्वविद्यालय	ड़) गुजरात

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

लघु प्रश्न :

1. हिन्दू, जैन और बौद्ध साहित्यों के दो-दो ग्रंथों के नाम बताएं।
2. कला के प्रकारों को सूचीबद्ध करें।
3. चोलवंश की दक्षिण भारतीय कला (नटराज की मूर्ति) की विशेषताएं बताएं।
4. प्राचीन भारत के शिक्षा के मुख्य केन्द्रों को सूचीबद्ध करें।
5. जीवन व्यवस्था को किस आधार पर बांटा गया था?

आइए विचार करें :

1. वैदिक शिक्षण पद्धति की विशेषताएं क्या हैं?
2. वैदिक काल में स्त्री शिक्षा एवं आज की स्त्री शिक्षा कि व्यवस्था में तुलना कीजिए।
3. पूर्व पाषाण काल की कला एवं सिंधु घाटी की कला में समानताओं व विभिन्नताओं का तुलनात्मक विश्लेषण करें।
4. कला से क्या अभिप्राय है एवं उसके स्रोत क्या हैं?
5. प्राचीन भारत के शिक्षा के केन्द्रों की विशेषताओं का विश्लेषणात्मक वर्णन करें।

आओ करके देखें

भारत के मानचित्र पर निम्न स्थानों को अंकित कर एवं उनका नाम लिखें :

1. कांचीपुरम	2. बिहार	3. अजंता
4. बाघ	5. एलोरा	6. नालंदा
7. वल्लभी	8. कांची	

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अध्याय - 6

राजा दाहिर एवं राजा आनन्दपाल

आओ जानें

- सिन्ध राज्य का राजा दाहिर - संघर्ष एवं उसकी उपलब्धियां
- चचनामा का विवरण
- हिन्दूशाही शासक आनन्दपाल - संघर्ष एवं उसकी उपलब्धियां
- बाह्य आक्रमणों का प्रतिरोध

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

विदेशी आक्रमणकारियों से भारत की सभ्यता व संस्कृति की रक्षा के लिए बलिदान देने वाले शासकों की भारतीय इतिहास में कोई कमी नहीं है। भारत में अनेक ऐसे शासक हुए है जिन्होंने विदेशी आक्रमणकारियों से लोहा लिया। सिंध का राजा दाहिर व काबुल का हिंदुशाही राजा आनन्दपाल ऐसे ही महान शासक थे। जिनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है :

सिन्ध का राजा दाहिर

सातवीं शताब्दी में पश्चिमी भारत में सिंध एक महत्वपूर्ण राज्य था। सिन्ध पर साहसी राय द्वितीय के वंशज पिछले छः सौ वर्षों से शासन कर रहे थे। साहसी राय का कोई पुत्र नहीं था। इसलिए साहसी राय के शासन काल में ही चच नामक एक मंत्री को राज्य का अगला राजा घोषित कर दिया गया। साहसी राय की मृत्यु के बाद चच, सिंध का राजा बन गया। राजा साहसी राय की पत्नी सोहन्दी ने दरबारियों की सलाह से उससे विवाह कर लिया। जिससे दाहिर तथा एक अन्य पुत्र का जन्म हुआ।

चच अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहा और उसके बाद उसके छोटे भाई चन्द्र ने शासन सम्भाला लेकिन वह केवल सात वर्ष तक ही शासन कर सका। इसके बाद चच के पुत्रों में राजगद्दी के लिए युद्ध छिड़ गया, जिसमें दाहिर को विजय प्राप्त हुई तथा 700 ई. में उसने अपने साम्राज्य को पुनः संगठित किया।

- दाहिर ने सभी समुदायों को साथ लेकर चलने का संकल्प किया।
- दाहिर अपना शासन राजधानी अलोर से चलाते थे।
- देबल सिंध राज्य की प्रमुख बन्दरगाह थी।
- दाहिर बचपन से ही वीर और साहसी थे।
- उनके दो पुत्र जैसिया और घरसिया तथा दो पुत्रियां सूर्य देवी और परमल देवी थीं।

चचनामा : यह सिन्ध के इतिहास से सम्बन्धित एक पुस्तक है। इसका लेखक ‘अली अहमद’ है। इसमें चच राजवंश के इतिहास तथा अरबों द्वारा सिंध विजय का वर्णन किया गया है। इस पुस्तक को ‘फतहनामा-ए-सिन्ध’ भी कहते हैं।

राजा दाहिर का संघर्ष

दाहिर एक शक्तिशाली शासक था। उसके समय में सिन्ध पर अरबों ने कई आक्रमण किये। अरबों का सिन्ध पर आक्रमण का उद्देश्य राज्य विस्तार के साथ-साथ इस्लाम धर्म का प्रचार करना तथा धन लूटना था। प्रारम्भ में उन्होंने सिन्ध की सीमा पर जल और स्थल मार्ग से आक्रमण किए।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आठवीं सदी के आरम्भ में अरबों ने सिन्ध के मकरान तट पर अधिकार जमा लिया। इसके बाद सिन्ध-विजय का मार्ग प्रशस्त हो गया। इसी समय लंका से आने वाले अरब जहाजों को देबल के समुद्री तट पर डाकुओं द्वारा लूट लिया गया। अरब जहाज की लूट की घटना से ईराक का गवर्नर हज्जाज बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने दाहिर से उन डाकुओं को दण्डित करने और क्षति-पूर्ति की मांग की। दाहिर ने दोनों प्रस्तावों को स्वीकार करने में अपनी असमर्थता जताई। जिनके कारण हज्जाज ने बारी-बारी से तीन सेनानायकों को दाहिर के विरुद्ध भेजा।

हज्जाज द्वारा भेजे गए प्रथम दो सेनानायकों उबैदुल्लाह और बुडैल को दाहिर ने मार डाला। दाहिर को जब ज्ञात हुआ कि सिन्धु नदी के पश्चिमी तट के प्रशासक अरबों की सहायता के लिए तैयार हो गए हैं तो उसने सुदृढ़ प्रतिरक्षा के लिए अपने पुत्र जैसिया को बड़ी संख्या में सैनिकों के साथ नदी के तट पर भेजा। बड़ी कुशलता से नदी के दूसरे तट की नाकाबंदी की। इसी कारण अरब सिन्ध नदी पार न कर सके।

अरबों का प्रतिरोधः भारत पर अरबों ने पहला समुद्री आक्रमण 636 ई. में बम्बई के निकट थाना पर किया लेकिन असफल रहे। उसके बाद उन्होंने भड़ोच और देबल पर भी समुद्री आक्रमण किये जिनमे उन्हें पराजय का मुंह देखना पड़ा। सातवीं शताब्दी में अरबों ने एक के बाद एक सिंध पर कई आक्रमण किये लेकिन सिंध के शासकों के सफलतापूर्वक प्रतिरोध के सामने उन्हें मुंह की खानी पड़ी। आश्चर्यजनक बात यह थी कि अरब भारत भूमि पर उस समय पराजित हो रहे थे जिस समय वो विश्व के अन्य भागों में विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्य का विस्तार तथा इस्लाम का प्रसार कर रहे थे।

सिन्ध पर आक्रमण करने वाला तीसरा प्रमुख अरब सेनानायक मोहम्मद-बिन-कासिम था। उसने सिन्ध पर 712 ई. में आक्रमण किया था। कासिम के पास पन्द्रह हज़ार सैनिकों की प्रशिक्षित सेना थी। कासिम को मकरान तट पर वहां के राजा की सहायता मिली।

कासिम ने देबल पर अधिकार कर लिया और निर्दयता से सत्रह वर्ष से अधिक आयु के पुरुषों की हत्या करवा दी। देबल में तीन दिन तक मुस्लिम सैनिक उत्पात मचाते रहे, मंदिर तोड़ कर उनके स्थान पर मस्जिदें बनाई गई। कासिम की सेना ने नगर में लूटमार की तथा भारी संख्या में पुरुषों, स्त्रीयों व बच्चों को दास बना लिया गया। दाहिर ने रावर नामक स्थान पर 50 हज़ार सैनिकों के साथ युद्ध किया। राजा दाहिर ने मोहम्मद-बिन-कासिम का डटकर मुकाबला किया। संघर्ष के प्रारम्भ होने पर कभी एक पक्ष का पलड़ा भारी होता तो कभी दूसरे पक्ष का। दोपहर पश्चात् तो लगने लगा कि दाहिर की सेना की जीत होने वाली है और अरब सेना रणस्थल से भागने लगी। लेकिन मोहम्मद-बिन-कासिम ने उनका साहस बढ़ाया और वे पुनः जोर-शोर से संघर्ष करने लगे। संघर्ष के दौरान सायंकाल हाथी पर सवार दाहिर को सीने में एक तीर लगा। इस प्रकार 20 जून 712 ई. को दाहिर वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते हैं?

राजा दाहिर सिन्ध का अन्तिम महान शासक था। जिसने मोहम्मद-बिन-कासिम के आक्रमण का 712 ई. में प्रतिरोध किया। राजा दाहिर उच्च आदर्शों का पालन करने वाला वीर शासक था। उसने विपत्ति में फंसे मोहम्मद-बिन-कासिम पर उस समय आक्रमण नहीं किया जब वह सिंधु नदी के किनारे पर शिविर में दो महीने तक अपने बीमार घोड़ों के साथ विश्राम कर रहा था। यह आदर्श, राजा दाहिर के लिए आत्मघाती सिद्ध हुआ।

दाहिर की मृत्यु के पश्चात् उसकी विधवा रानीबाई ने किले के भीतर से अपने पन्द्रह हजार सैनिकों के साथ अरबों के विरुद्ध युद्ध का मोर्चा सम्भाला तथा अरब सैनिकों को भारी नुकसान पहुंचाया। लेकिन सीमित साधनों के कारण उसका प्रतिरोध अधिक समय तक नहीं चला। उसने जौहर कर अपने प्राणों का त्याग किया। दाहिर का पुत्र जैसिया अन्तिम समय तक लड़ता रहा। दाहिर की दो पुत्रियों सूर्यदेवी और परमल देवी को मोहम्मद-बिन-कासिम ने बन्दी बनाकर खलीफा के पास भिजवा दिया। दोनों ने कूटनिति का प्रयोग करके खलीफा से कासिम को मृत्यु दण्ड दिलवा दिया। सिन्ध क्षेत्र पर अरबवासियों का अधिपत्य हो गया तथा वे यहां की स्थानीय जनता पर निरन्तर अत्याचार करने लगे। ऐसी स्थिति में मुस्लिम शासकों को यहां विद्रोह का सामना करना पड़ा। 715 ई. के बाद सिन्ध में पुनः अरबों के विरुद्ध प्रतिरोध शुरू हो गया। अरबों को शीघ्र ही यह समझ आ गया कि तलवार की नीति यहां सफल नहीं होगी इसलिए हज्जाज़ ने सिन्धवासियों को मंदिरों के पुनर्निर्माण की अनुमति देकर मूर्ति पूजा की अनुमति दी लेकिन इसके लिए उनसे जज़िया कर वसूल किया जाने लगा।

अरबों को सिंध में 636 ई. से 712 ई. तक यह के शासकों के लगातार प्रतिरोध सहना पड़ा तथा उन्हें 75 वर्ष की असफलता के बाद 712 ई. में सिंध पर विजय प्राप्त हुई लेकिन इसके बाद भी भारत की भूमि पर उनका लगातार प्रतिरोध होता रहा तथा वे भारत के अन्य भागों में प्रवेश नहीं कर पाए।

हिन्दूशाही शासक आनन्दपाल

हिन्दुशाही राज्य उत्तर पश्चिम भारत का एक महत्त्वपूर्ण राज्य था। हिन्दू शाही वंश की स्थापना नौवी सदी के उत्तरार्ध में कल्लर ने की। आनन्दपाल इस राज्य का एक शक्तिशाली शासक था। वह जयपाल का पुत्र था। जयपाल इस वंश का योग्य एवं पराक्रमी शासक था। उसका राज्य सरहिन्द, लगमान, कश्मीर और मुल्तान तक फैला था। उसकी राजधानी वैहिंद थी। इस राज्य की सीमाएं चिनाब नदी से हिंदुकुश पर्वत तक फैली थी। इस राज्य की जानकारी राजतरंगिणी नामक ग्रन्थ से मिलती है।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

दसवीं सदी के अंत में एक बार पुनः भारत पर विदेशी आक्रमणों का खतरा उस समय बढ़ गया जब गज़नी में तुर्कों ने अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। तुर्क मध्य एशिया की एक बर्बर जाति थी, जिसने इस्लाम धर्म अपना लिया था। गज़नी में एक तुर्क सरदार अल्पतगीन ने 962 ई. में अपना राज्य स्थापित किया। इसी राज्य के शासक भारत के लिए खतरा बन गए थे।

क्या आप जानते हैं?

राजतरंगिणी, कल्हण द्वारा रचित एक संस्कृत ग्रन्थ है। 'राजतरंगिणी' का शाब्दिक अर्थ है- राजाओं की नदी, जिसका भावार्थ है- 'राजाओं का इतिहास या समय-प्रवाह।' यह कविता के रूप में है। इसमें कश्मीर का इतिहास वर्णित है जो महाभारत काल से आरम्भ होता है।

गज़नी राज्य के सीमावर्ती भारतीय क्षेत्र पर उस समय हिंदुशाही शासकों की सत्ता थी। गज़नी के शासक सुबुक्तगीन व हिंदुशाही शासक जयपाल के बीच शत्रुता थी। 986 ई. में विशाल सेना सहित जयपाल ने गज़नी पर आक्रमण कर दिया। लमगान के निकट दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ लेकिन जब युद्ध चल रहा था तो अचानक तूफान आ गया। तूफान ने जयपाल की सेना को विपदा में डाल दिया। विवश होकर जयपाल को तुर्कों से संधि करनी पड़ी। जयपाल इस संधि से बड़ा विचलित रहा।

कुछ समय बाद जयपाल को सूचना मिली कि सुबुक्तगीन उस पर आक्रमण करने वाला है। जयपाल ने विदेशी आक्रमण का सामना करने के लिए कालिंजर, कन्नौज व अजमेर के शासकों से सहायता मांगी। इन सभी शासकों ने तुर्कों के भारत पर आक्रमण को रोकने के लिए अपनी सेनाएं भेज दी। लमगान नामक स्थान पर युद्ध हुआ लेकिन इस युद्ध में जयपाल की सेना को सफलता नहीं मिली।

सुबुक्तगीन की मृत्यु के बाद 997 ई. में उसका पुत्र महमूद गज़नवी शासक बना। महमूद एक कट्टर मुसलमान शासक था। उसने इस्लाम का प्रचार व भारत की धन संपदा को लूटने के लिए भारत पर 17 बार आक्रमण किए। तुर्क आक्रमणकारी महमूद गज़नवी से पराजित होकर जयपाल ने 1001 ई. में अग्नि में कूद कर आत्महत्या कर ली। जयपाल की मृत्यु के बाद आनन्दपाल ने 1001 से 1010 ई. तक शासन किया। आनन्दपाल सिंहासन पर बैठने से पहले कई युद्धों में विजय प्राप्त कर स्वयं को अग्रणी योद्धा साबित कर चुका था। आनन्दपाल ने लाहौर को विजय कर अपने पिता से प्राप्त राज्य का विस्तार किया।

आनन्दपाल ने अपनी राजधानी उदभाण्डपुर (ओहिन्द) से बदलकर झेलम नदी के तट के पास नन्दना नामक नगर को बनाया। 1006 ई. में महमूद गज़नवी ने मुल्तान के करामाती धर्म को मानने वाले अब्दुल दाऊद पर हमले की योजना बनाई लेकिन सिन्धु नदी में बाढ़ के कारण उसने आनन्दपाल से रास्ता देने की अनुमति मांगी। लेकिन आनंदपाल ने देश प्रेम का परिचय देते हुए इंकार कर दिया इसपर महमूद ने आनंदपाल पर आक्रमण करके उसे पराजित कर दिया। आनंदपाल पराजित हो गया कश्मीर की तरफ चला गया।

आनन्द पाल ने अपने राज्य को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया। आनन्दपाल हमेशा अपने पड़ोसी राज्यों के साथ मैत्री पूर्ण सम्बन्ध रखता था। उसने बाहरी आक्रमणों से देश की रक्षा के लिए अन्य राज्यों का सहयोग लिया। साम्राज्य की समृद्धि के लिए उसने कृषि के साथ-साथ व्यापार पर भी जोर दिया। आनन्दपाल एक योग्य एवं कुशल व्यक्तित्व वाला शासक था। उसने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ करना शुरू कर दिया। उसने तुर्कों का सामना करने के लिए ग्वालियर, कन्नौज, कालिंजर व उज्जैन के शासकों के साथ मिलकर एक संघ बनाया। उसने 1008 ई. में महमूद गज़नवी के आक्रमण का अटक के पास वैहिंद में कड़ा मुकाबला किया।

वैहिंद की लड़ाई : 1008 ई. तक महमूद भारत का केवल सीमांत ही छू पाया था। सतलुज पार के भारत का साम्राज्य अभी उससे बहुत दूर था। वह भारत में इस्लाम का प्रसार करके मुस्लिम जगत में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहता था। इसके लिए उसे पहले आनंदपाल से निपटना था। इस उद्देश्य से महमूद ने 1008 ई. में भारत की तरफ प्रस्थान किया। दूसरी ओर आनदपाल भी अपनी सेनाओं के साथ वैहिंद के मैदान में आ डटा। एक मध्यकालीन लेखक फरिश्ता के अनुसार आनंदपाल को इस युद्ध में उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेर की सेनाओं की सहायता प्राप्त हुई। आनंदपाल की सहायता के लिए तीस हजार खोखर भी आये थे। आनंदपाल व उसके पुत्र त्रिलोचनपाल के नेतृत्व वाली विशाल सेना देखकर महमूद के होश उड़ गए। दोनों सेनाएं चालीस दिनों तक आमने सामने खड़ी रही। इस दौरान महमूद की सेना ने खाइयां खोदकर बचाव का रास्ता बनाया। दूसरी और आनंदपाल की सेना में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती देख कर महमूद ने आक्रमण का आदेश दिया। बहादुर खोखरों ने पांच हजार तुर्क सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। आनंदपाल की जीत निश्चित लग रही थी। तभी आनंदपाल का हाथी चोट ग्रस्त होकर रणभूमि से भाग निकला। राजा को पलायन करते देख सेना में भगदड़ मच गई तथा आनंदपाल की विजय पराजय में बदल गयी।

महमूद गज़नवी ने तीव्रता से आगे बढ़कर नगरकोट की घेराबंदी की तथा तीन दिनों के भयंकर युद्ध के बाद उस पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। नगरकोट की लूट में इतना धन मिला कि जितने ऊंट मिले उन सब पर उसे लाद लिया और जो धन शेष रहा उसे अधिकारियों में बांट दिया गया। इसमें स्वर्ण-सिक्के, सोना, चांदी की बहुमूल्य वस्तुएं, मोती और सुन्दर वस्त्र आदि शामिल थे।

आनन्दपाल उत्तर पश्चिमी भारत का एक महान शासक था। वह अपने साम्राज्य से बहुत लगाव रखता था। वह महमूद गज़नवी के आक्रमण व भोली-भाली जनता की निर्दयतापूर्वक की गई हत्याओं एवं लूट खसोट को सहन नहीं कर पाया। एक वर्ष के पश्चात् राजधानी नन्दना में उसकी मृत्यु हो गयी। आनंदपाल के संघर्ष को उसके पुत्र त्रिलोचनपाल तथा पौत्र भीमपाल ने 1026 ई. तक जारी रखा। उनके अतिरिक्त चंदेल राजा विद्याधर ने भी कालिंजर और ग्वालियर में महमूद का कड़ा प्रतिरोध किया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते हैं?

1025 ई. में महमूद ने सोमनाथ के मंदिर पर आक्रमण किया। मंदिर की रक्षा करते हुए पचास हजार हिन्दू मारे गए। यहां से उसे भारी धनराशि, हीरे-जवाहरात एवं सोना चांदी प्राप्त हुआ। तभी गुजरात के शासक भीम प्रथम की तैयारी को देखते हुए उसने गज़नी जाने के लिए नए रास्ते का विकल्प चुना। मिन्हास-उस- सिराज ने लिखा है कि एक हिन्दू मार्गदर्शक ने महमूद की सेना को रास्ता भटकाकर कच्छ के मरुस्थल की तरफ भेज दिया। इस रास्ते पर महमूद की सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी।

सामूहिक गतिविधि

अपने आपको चार-चार के समूह में विभाजित करें। राजा दाहिर के शासनकाल का वर्णन करने के लिए नीचे दिए गए मुख्य बिंदुओं का उपयोग करें। मुख्य बिंदुओं का उपयोग करते हुए जानकारी एकत्रित करने के उपरांत प्रत्येक समूह के एक प्रतिनिधि को अपने समूह के संस्करण को पढ़ने दें।

राजा दाहिर, सिन्ध, चचनामा, देबल, जौहर, मोहम्मद-बिन-कासिम, जैसिया, सूर्यदेवी, परमल देवी

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

हिंदुशाही राज्य के अतिरिक्त महमूद गज़नवी ने भेरा, मुल्तान, नगरकोट पर आक्रमण किए तथा बहुत-सा धन लूटकर गज़नी लौटा। महमूद गज़नवी ने हिंदुओं के पवित्र स्थल थानेश्वर पर आक्रमण किया। यहां चक्रस्वामी का एक बड़ा प्रसिद्ध मंदिर था। महमूद गज़नवी ने न केवल मंदिर की संपत्ति को लूटा बल्कि चक्रस्वामी की मूर्ति को भी खण्डित कर दिया। उसके मंदिर को गिरा दिया। महमूद गज़नवी ने हिंदुओं के एक अन्य पवित्र स्थल मथुरा पर भी आक्रमण किया। यहां भी उसने न केवल धन-संपत्ति लूटी बल्कि भगवान केशव की मूर्ति को भी अपमानित किया। उसे मथुरा के मंदिर से 30 मन सोने, 2 बहुमूल्य रत्न तथा 50 नीलम प्राप्त हुआ। नगरकोट से वह 7 लाख स्वर्ण दिनारें, दौ सौ मन सोना दो हजार मन चांदी तथा 20 मन हीरे लूट कर ले गया था।

जन-धन ही नहीं बल्कि उसके आक्रमणों से भारतीय कला व संस्कृति को भी हानि हुई थी। महमूद ने जिस भी नगर पर आक्रमण किया, उसे नष्ट कर दिया। कला के उत्कृष्ट उदाहरण मन्दिर उसने तोड़ दिए। मथुरा, नगरकोट, कुरुक्षेत्र एवं सोमनाथ के मंदिर जो पिछली कई शताब्दियों से ज्ञान, कला एवं संस्कृति के केन्द्र के रूप में उभरे थे, उन्हें नष्ट करके महमूद गज़नवी ने भारत की धन सम्पदा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति को भी हानि पहुंचाई। उसने भारी संख्या में पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों को दास बनाया। महमूद के आक्रमणों ने हिन्दुओं के मन में इस्लाम के प्रति घृणा उत्पन की।

माइंड मैप - विद्यार्थी पुनरावृत्ति करते हुए स्वयं भरें

राजा दाहिर	आनंदपाल
पारिवारिक जीवन	पारिवारिक जीवन
संघर्ष	संघर्ष

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ जानें, कितना सीखा

सही उत्तर छांटें :

1. मोहम्मद-बिन-कासिम ने सिंध पर कब हमला किया?

   क) 720 ई. ख) 709 ई. ग) 712 ई. घ) 770 ई.

2. आनंदपाल किसका पुत्र था?

   क) जयपाल ख) राजपाल ग) साहसी राय घ) इनमें से कोई नहीं

3. दाहिर की मृत्यु कब हुई?

क) 720 ई. ख) 724 ई. ग) 712 ई. घ) 748 ई.

4. आनंदपाल ने अपने शासनकाल के दौरान किस नगर को अपनी राजधानी बनाया?

क) नंदना ख) वैहिंद ग) देबल घ) आलोर

5. लंका से आने वाले अरब जहाजों को किस समुद्री तट पर डाकुओं ने लूट लिया?

क) नंदना ख) देबल ग) कोचीन घ) मंगलौर

रिक्त स्थान की पूर्ति करें :

1. राजा दाहिर की माता का नाम .... था।
2. आठवीं सदी के आरंभ में अरबों ने सिंध के .... पर अधिकार जमा लिया।
3. विधवा रानीबाई ने अपनी पवित्रता को बचाने के लिए .... प्रथा द्वारा अपने प्राणों का त्याग किया।
4. तुर्क .... की एक बर्बर जाति थी।

5 सुबुक्तगीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र .... गज़नी का शासक बना।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

निम्नलिखित कथनों में सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाओ :

1. अरबों ने सिंध की सीमा पर सिर्फ थल मार्ग से आक्रमण किया। ( )
2. मोहम्मद-बिन-कासिम के पास दस हजार सैनिकों की प्रशिक्षित सेना थी। ( )
3. आनंदपाल की मृत्यु के बाद उसके पुत्र त्रिलोचनपाल ने महमूद गज़नवी के विरुद्ध भारतीय राजाओं का संघ बनाया। ( )
4. सोमनाथ मंदिर की रक्षा करते हुए 50000 हिन्दु मारे गए। ( )
5. महमूद गज़नवी का मथुरा पर आक्रमण उसका भारत पर अंतिम आक्रमण था। ( )

उचित मिलान करें :

1. सोमनाथ मन्दिर	क) थानेसर
2. हिन्दूशाही शासक	ख) गज़नी
3. महमूद गज़नवी	ग) राजतरंगिनी
4. कल्हण	घ) गुजरात
5. चक्रस्वामी मन्दिर	ङ) आनन्दपाल

लघु उत्तर वाले प्रश्न :

1. चचनामा क्या है और इसमें किस राजवंश के विषय में वर्णन किया गया है?
2. अरबों का सिंध पर आक्रमण करने का क्या उद्देश्य था?
3. जयपाल के हिन्दूशाही राज्य की सीमाएं कहां तक फैली थी?
4. महमूद गज़नवी ने मथुरा पर आक्रमण के दौरान किस भगवान की मूर्ति को अपमानित किया था?

आइए विचार करें :

1. राजा दाहिर के प्रतिरोध का वर्णन किजिए।
2. हिंदूशाही शासक आनन्दपाल और गज़नी के शासक महमूद गज़नवी के बीच हुए संघर्ष का वर्णन करें।
3. महमूद गज़नवी द्वारा सोमनाथ के मंदिर पर किए आक्रमण का वर्णन करें।
4. महमूद गज़नवी द्वारा भारत पर किए गए आक्रमणों ने कैसे धन-संपदा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति को भी हानि पहुंचाई?
5. आनंद पाल एक योग्य एवं कुशल शासक था। उपरोक्त कथन को तर्क सहित सिद्ध करें।

कल्पना करें

1. आप अगर राजा दाहिर की सेना में सेनापति होते तो बाहरी आक्रमणों को रोकने की क्या रणनीति अपनाते?

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अध्याय - 7

सुहेलदेव एवं पृथ्वीराज चौहान

आओ जानें

- राजा सुहेलदेव का जीवन एवं संघर्ष
- पृथ्वीराज चौहान का जीवन एवं संघर्ष

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

भारत में ऐसे पराक्रमी एवं साहसी शासकों की श्रृंखला काफी बड़ी रही है जिन्होंने न केवल विदेशी आक्रमणकारियों से देश की रक्षा की बल्कि यहां की सभ्यता व संस्कृति को भी फलने फूलने का अवसर दिया। इस अध्याय में हम ऐसे ही दो पराक्रमी शासकों का वर्णन करेंगे जिनके नाम हैं – राजा सुहेलदेव तथा पृथ्वीराज चौहान।

चित्र-7.1

चित्र-7.2

भारत सरकार द्वारा 2018 ई. में राजा सुहेलदेव तथा पृथ्वीराज चौहान पर जारी डाक टिकट

राजा सुहेलदेव

राजा सुहेलदेव एक वीर एवं पराक्रमी शासक थे। अपने पिता प्रसेन्नजित की मृत्यु के बाद 1027 ई. में सुहेलदेव बहराइच राज्य के शासक बने। उसने अपने पिता द्वारा स्थापित बहराइच राज्य को और अधिक सुदृढ़ किया। उसने राज्य के रक्षात्मक उपायों पर विशेष बल देते हुए सेना का पुनर्गठन किया। उसने 1027 ई. से 1077 ई. तक शासन किया। राजा सुहेलदेव ने महाराजा की उपाधि भी धारण की।

चित्र-7.3 राजा सुहेलदेव की एक प्रतिमा

राजा सुहेलदेव ने अवध एवं उसके आसपास के विभिन्न क्षेत्रों को संगठित करके एक सुदृढ़ राज्य का निर्माण किया। ये क्षेत्र प्रशासनिक आधार पर 21 भागों में विभक्त थे, जहां राजा सुहेलदेव के सहयोगी उपराजा स्वतन्त्र रूप से प्रशासनिक प्रबन्धक का कार्य करते थे। जिन्हें राजभर राजा भी कहा जाता था।

राजा सुहेलदेव ने अपने पराक्रम एवं बुद्धिमता से राज्य की सीमाओं का विस्तार करते हुए गोरखपुर से सीतापुर, गोंडा, लखनऊ, बाराबंकी, उन्नाव व लखीमपुर तक फैलाया।

©BSEH Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते है?

- राजा सुहेलदेव का जन्म 990 ई. (वसंत पंचमी के दिन) में हुआ था। वह राजभर के नाम से प्रसिद्ध थे।
- इनके दो भाई बहरदेव तथा मल्लदेव थे। वे भी अपने भाई सुहेलदेव की भांति वीर एवं पराक्रमी थे।
- आज भी उत्तर प्रदेश के अवध और मैदानी भागों में राजा सुहेलदेव की वीरता की कहानियां सुनाई जाती हैं।
- भारत सरकार ने राजा सुहेलदेव पर डाक टिकट जारी करके उनके प्रति सम्मान व्यक्त किया है।

1000 ई. से लेकर 1027 ई. तक महमूद गज़नवी ने भारत में इस्लाम के प्रचार के उद्देश्य से सत्रह बार आक्रमण किए। वह मथुरा, थानेसर, कन्नौज व सोमनाथ के अति समृद्ध मन्दिरों को तोड़ने में सफल रहा। सोमनाथ की लड़ाई में उसके साथ उसके भानजे सैयद सालार मसूद ने भी भाग लिया था। 1030 ई. में महमूद गज़नवी की मृत्यु के बाद उत्तर भारत में इस्लाम का विस्तार व तुर्क राज्य के प्रसार करने की जिम्मेदारी सैयद सलार मसूद ने अपने कन्धों पर ली।

©BSEH Bhiwani Not to be republished

वह भी भारत में इस्लाम का प्रसार करने के साथ-साथ यहां कि धनसंपदा को लूटना चाहता था। उसने दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों को जीतने के लिए आक्रमण किया। यहां उसका सामना राय महिपाल व राय हरगोपाल नामक दो स्थानीय प्रशासकों ने किया। लेकिन मसूद ने इनकी सेना को हरा दिया व दोनों लड़ते हुए युद्ध में मारे गए। मेरठ, बुलंदशहर व बदायुं क्षेत्र के स्थानीय शासकों ने मसूद की अधीनता स्वीकार कर ली। मसूद ने कन्नौज को केंद्र बनाकर पूर्व की ओर सेना भेजने का निर्णय किया। उसने सतारिख पर विजय प्राप्त की। इस क्षेत्र के स्थानीय शासकों ने बहराइच के राजा सुहेलदेव से मसूद को रोकने का आग्रह किया।

व्यक्तिगत गतिविधि

राजा सुहेलदेव के राज्य में आने वाले जिलों की सूची बनाकर उनकी वर्तमान भौगोलिक स्थिति भी जानने का प्रयास करें।

बहराइच के राजा भगवान सूर्य के उपासक थे। वे बहराइच में सूर्य कुण्ड पर भगवान सूर्य की पूजा करते थे। बहराइच को पहले ब्रह्माइच के नाम से जाना जाता था।

सालार मसूद को रोकने के लिए बहराइच के आस-पास के सभी छोटे-बड़े राजा सुहेलदेव के नेतृत्व में लामबन्द हो गए। ये राजा बहराइच के शहर के उत्तर की ओर लगभग तीन मील की दूरी पर भकला नदी के किनारे अपनी सेना सहित इकट्ठे हुए। अभी ये युद्ध की तैयारी ही कर रहे थे कि सालार मसूद ने उन पर रात्रि में आक्रमण कर दिया। इस अप्रत्याशित आक्रमण में दोनों ओर के अनेक सैनिक मारे गये लेकिन बहराइच की इस पहली लड़ाई में सालार मसूद विजयी रहा।

पहली लड़ाई में परास्त होने के पश्चात् पुनः अगली लड़ाई के लिए बहराइच की सेना संगठित होने लगी। लेकिन इस बार भी उन्होंने रात्रि-आक्रमण की संभावना पर ध्यान नहीं दिया। अतः वे पुनः रात के समय हुए इस युद्ध में भी परास्त हो गए तथापि तुर्क सेना के अनेक सैनिक इस युद्ध में मारे गये।

अब बहराइच की सेना सुहेलदेव के नेतृत्व में निर्णायक युद्ध हेतु तैयार हो गई थी। लड़ाई का क्षेत्र चित्तौर झील से हठीला और अनारकली झील तक फैला हुआ था।

जून 1034 ई. में दोनों सेनाओं के बीच एक भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में सैयद सलार मसूद मारा गया। उसकी बची हुई सेना भाग गयी।

सैयद मसूद को उसकी विशाल सेना के साथ समाप्त करने के बाद राजा सुहेलदेव ने विजय पर्व मनाया और इस महान् विजय के उपलक्ष्य में कई पोखर भी खुदवाए। वह एक विशाल स्तम्भ का भी निर्माण कराना चाहते थे लेकिन वे इसे पूरा न कर सके। 1034 ई. में तुर्क सेना की इस पराजय के बाद लगभग 140 वर्षों तक किसी भी तुर्क सेनापति ने भारत को लूटने व यहां इस्लाम का प्रसार करने का साहस नहीं किया।

बहराइच का युद्ध : जून 1034 ई. को सुहेलदेव के नेतृत्व में एक बड़ी सेना ने सालार मसूद की फौज पर तूफानी गति से आक्रमण किया। इस युद्ध में सालार मसूद अधिक देर तक न ठहर सका। सुहेलदेव के धनुष द्वारा छोड़ा गया एक विषबुझा बाण सालार मसूद के गले में आ लगा, जिससे उसका देहान्त हो गया। इसके दूसरे ही दिन शिविर की देख-भाल करने वाला सालार इब्राहिम भी बचे हुए सैनिकों के साथ मारा गया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पृथ्वीराज चौहान

भारतीय राजपूत राजवंशों में चौहान वंश को विशेष स्थान प्राप्त है। चौहान वंश के शासकों ने 9वीं से 12वीं सदी तक शासन किया। इस राजवंश के शासकों ने आधुनिक राजस्थान हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, गुजरात एवं इसके समीपवर्ती क्षेत्रों पर शासन किया। प्रारम्भिक काल में इनकी राजधानी शाकंभरी (सांभर झील) थी इसके बाद अजमेर को राजधानी बनाया गया। जिसके कारण इन्हें अजमेर के चौहानों के रूप में जाना जाता है।

इस राजवंश के संस्थापक का नाम राजा वासुदेव चौहान था। इस वंश के प्रमुख शासक थे : विग्रहराज प्रथम (734–759 ई.), गोविन्द राज-प्रथम (809-836 ई.) विग्रहराज द्वितीय (971–988 ई.) विग्रह राज तृतीय (1070–1090 ई.) विग्रहराज चतुर्थ (1150–1164 ई.) पृथ्वीराज चौहान (1178–1192 ई.)।

चौहान वंश के महान एवं अन्तिम शासक पृथ्वीराज चौहान तृतीय थे। जिन्होंने दिल्ली के आस-पास अपने पराक्रम से चौहान वंश के महान साम्राज्य की स्थापना की।

पृथ्वीराज चौहान को 'राय पिथौरा' भी कहा जाता है। इनका जन्म 1165 ई. में हुआ। यह अजमेर के शासक सोमेश्वर और कमला देवी के पुत्र थे। उन्होंने बाल्य काल में ही युद्ध विद्या सीख ली थी। पृथ्वीराज चौहान ने बिना किसी हथियार के शेर को मार गिराया। जिसके कारण उसे 'अजमेर का शेर' भी कहा जाता है। उसे पृथ्वीराज तृतीय के नाम से भी जाना जाता था।

राज्याभिषेक

पृथ्वीराज चौहान को उनके पिता की मृत्यु के पश्चात 1178 ई. में तेरह वर्ष की आयु में अजमेर का शासक नियुक्त किया गया। उसकी बहादुरी एवं शौर्य से प्रभावित होकर इसके नाना (अनंगपाल) ने उसे दिल्ली के सिहांसन का उत्तराधिकारी भी घोषित किया।

पृथ्वीराज चौहान का साम्राज्य विस्तार

पृथ्वीराज चौहान ने गद्दी पर बैठने के पश्चात साम्राज्य विस्तार की नीति अपनाते हुए 1182 ई. में भाड़ान के राजा को परास्त किया और रिवाड़ी, भिवानी तथा अलवर के क्षेत्रों को अपने साम्राज्य में मिला था। इसके बाद बुन्देलखण्ड के चन्देल शासक परमाल को भी हराया।

उन्होंने 1186 ई. में गुजरात के शासक भीमदेव द्वितीय को हराया तथा अपने साम्राज्य का विस्तार पश्चिमी भारत में किया। पृथ्वीराज चौहान ने महाराजधिराज की उपाधि धारण की।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

पृथ्वीराज चौहान के बारे में यह भी जानें

पृथ्वीराज चौहान ने 64 कलाओं व 14 विद्याओं का अध्ययन किया था।

पृथ्वीराज चौहान केवल 13 वर्ष की आयु में सिंहासन पर बैठे।

सम्राट पृथ्वीराज 36 अस्त्र धारण कर सकते थे।

चित्र-7.4

पृथ्वीराज चौहान को 6 भाषाओं संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची, मगधी व शूरसेनी का ज्ञान था।

चन्दबरदाई ने लिखा है कि पृथ्वीराज शब्दभेदी बाण चलाने में निपुण थे।

पृथ्वीराज चौहान के पिता का नाम सोमेश्वर व उनकी माता का नाम कमला देवी था।

पृथ्वीराज विजय नामक ग्रंथ में पृथ्वीराज की 16 रानियों के नाम मिलते हैं।

पृथ्वीराज चौहान धर्मशास्त्र, मीमांसा, आयुर्वेद, गणित व संगीत आदि विद्याओं के ज्ञाता थे।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते हैं?

पृथ्वीराज के पास एक विशाल सेना थी जिसमें तीन लाख सैनिक व 300 हाथी थे व सैनिक के रूप में कुशल घुड़सवार व ऊंट सवार भी थे।

पृथ्वीराज चौहान के बारे में जानकारी के मुख्य स्रोतों में 'पृथ्वीराजरासो' और 'पृथ्वीराज विजय' तथा 'हमीर महाकाव्य' प्रमुख हैं।

चित्र-7.5 पृथ्वीराजरासो ग्रंथ

सामूहिक गतिविधि

पृथ्वीराज चौहान के जीवन से संबंधित एक प्रेरक प्रसंग का पता लगाएं और कक्षा में नाटक (रोल प्ले) के माध्यम से प्रस्तुत करें।

पृथ्वीराजरासो

- 'पृथ्वीराजरासो' ढाई हजार पृष्ठों का महाकाव्य है जिसमें एक लाख छंद व 69 समय (सर्ग या अध्याय) हैं।
- इसके रचयिता चन्दबरदाई थे वे पृथ्वीराज के बचपन के मित्र और उनके राजकवि थे और उनकी युद्ध यात्राओं के समय वह ओजस्वी कविताओं से सेना को प्रोत्साहित भी करते थे।

भारत को 1175 ई. के बाद एक बार पुनः तुर्क आक्रमणों का सामना करना पड़ा। इस बार तुर्क आक्रमणकारी था मोहम्मद गौरी। उसने 1175 ई. से 1206 ई. तक भारत पर अनेक आक्रमण किये। इस समय भारत में गुजरात का चालुक्य, दिल्ली और अजमेर का चौहान तथा कन्नौज के गहड़वाल नामक तीन शक्तिशाली राजवंश थे। ये तीनों राजवंश अपने आप में इतने सक्षम और शक्तिशाली थे कि वे अकेले-अकेले ही तुर्क शत्रुओं से सफलता पूर्वक निपट सकते थे। मोहम्मद गौरी ने सैन्य बल के साथ-साथ युद्ध की रणनीति की ओर विशेष ध्यान दिया। सर्वप्रथम उसने खैबर की बजाए अधिक सुरक्षित एवं छोटे मार्ग का प्रयोग करते हुए गोमल दर्रे से भारत में प्रवेश किया। 1175 ई. में मोहम्मद गौरी ने मुल्तान को आसानी से जीत लिया। उसके बाद उसने उच्च के शासक भट्टी राय पर धोखे से विजय प्राप्त की।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

मूलराज तथा नायकी देवी से मोहम्मद गौरी की हार : 1178 ई. में मोहम्मद गौरी ने गुजरात के चालुक्य राजा मूलराज द्वितीय पर आक्रमण किया। यहां मूलराज द्वितीय की मां नायकी देवी के नेतृत्व में एक विशाल सेना ने मोहम्मद गौरी की सेना का सामना किया। इस युद्ध में मोहम्मद गौरी की सेना की भारी पराजय हुई। मोहम्मद गौरी जान बचाकर गज़नी वापस लौटा। यह पराजय इतनी भयंकर थी की मोहम्मद गौरी ने अपने जीवन में पुनः गुजरात की तरफ मुंह नहीं किया। इसके बाद मोहम्मद गौरी ने पेशावर और लाहौर को जीता। अब वह दिल्ली और अजमेर पर अधिकार करने की योजना बनाने लगा।

हमीर महाकाव्य के अनुसार पृथ्वीराज चौहान ने मोहम्मद गौरी को सात बार हराया। प्रबंध चिंतामणि एवं पृथ्वीराजरासो के अनुसार पृथ्वीराज चौहान ने मोहम्मद गौरी को इक्कीस बार हराया जबकि मुस्लिम लेखकों मिन्हास और फरिश्ता के अनुसार पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गौरी के बीच तराइन के मैदान में केवल दो लड़ाइयां हुई। इतिहासकार दशरथ शर्मा का मानना है कि 1186 ई. में लाहौर जीतने के बाद गौरी के सेना नायकों और पृथ्वीराज चौहान की सेनाओं की सीमा पर हुई झड़पों को हिंदू लेखकों ने बड़ी लड़ाइयां लिखा जबकि मुस्लिम लेखकों ने इनकी उपेक्षा कर दी।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

तराइन के युद्ध

तराइन का प्रथम युद्ध (1191 ई.)

1190 ई. में मोहम्मद गौरी ने दिल्ली की ओर बढ़ना आरम्भ किया उसने पृथ्वीराज के सीमान्त क्षेत्र (भटिंडा) पर अधिकार कर लिया। मगर पुनः कुछ दिनों के बाद पृथ्वीराज के सैनिकों ने गौरी के सैनिकों को वहां से भगा दिया। अगले ही वर्ष 1191 ई. में मोहम्मद गौरी ने अपनी सैनिक तैयारी के साथ दिल्ली विजय की योजना बनाई। दिल्ली से 80 मील दूर दोनों के मध्य तराइन (तरावड़ी) के स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में चौहान सेना ने अपनी पूरी ताकत दिखाई। इस युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के भाई गोबिन्दराय ने मोहम्मद गौरी पर हमला करके उसे घायल कर दिया। यदि उसके सैनिक उसे नहीं बचाते तो वह मृत्यु को प्राप्त हो गया होता। युद्ध में गौरी की बुरी तरह से पराजय हुई। गौरी की सेना जान बचाने के लिए भाग खड़ी हुई। गौरी के सैनिकों को सरहिन्द तक खदेड़ा गया।

पृथ्वीराज चौहान का कार्य पूर्ववर्ती शासकों से अधिक कठिन था क्योंकि अरबों एवं महमूद गजनवी के आक्रमणों से भारत अपनी प्राकृतिक सीमाएं खो चुका था। लाहौर के पूरे प्रदेश पर तुर्क मुसलमानों का अधिकार हो चुका था तथा भारत के तबरहिंद (भटिंडा) तक उनकी सीमाएं पहुंच चुकी थी। इसी कारण प्रथम तराइन युद्ध के बाद पृथ्वीराज चौहान एक सीमा तक ही गौरी का पीछा कर सकता था।

तराइन का द्वितीय युद्ध (1192 ई.)

तराइन के प्रथम युद्ध में हारने के बाद मोहम्मद गौरी गज़नी लौट गया। परन्तु वह अपनी अपमानजनक पराजय को न भूल सका। मोहम्मद गौरी अपनी पिछली पराजय का बदला लेना व भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। उसने अपनी सेना को एकत्रित करके 1192 ई. में भारत पर पुनः आक्रमण किया। गौरी की सेना में 120000 सैनिक थे। पृथ्वीराज को जब यह पता चला तो वह भी अपने अधीनस्थ राजाओं की सहायता से तराइन के मैदान में मुकाबला करने के लिए आ खड़ा हुआ। मोहम्मद गौरी ने रणनीति बनाकर सुबह-सुबह ही राजपूतों के शिविर पर उस समय हमला किया जिस समय सैनिक अपने नित्य कार्य से निवृत हो रहे थे। गौरी ने सेना को पांच भागों में बांट कर हमला किया। इस बार भी राजपूत वीरता से लड़े लेकिन उनकी पराजय हुई। मोहम्मद गौरी द्वारा पृथ्वीराज चौहान को पकड़ कर उसकी हत्या कर दी गई। इस विनाशक युद्ध के परिणामस्वरूप भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई।

तराइन के दूसरे युद्ध में पृथ्वीराज चौहान पर विजय प्राप्त करके 1194 ई. में मोहम्मद गोरी ने कन्नौज के शासक जयचंद राठौर को चंदावर के युद्ध में पराजित किया। मोहम्मद गौरी और उसके सेनानायकों कुतुबुद्दीन ऐबक एवं बख्तियार खिलजी को भी भारतीय शासकों के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। यद्यपि 1206 ई. में उत्तर भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना तो हो गई लेकिन इस कार्य में विदेशी आक्रमणकारियों को भारतीयों के सतत प्रतिरोध के कारण 570 वर्ष (636 ई. से 1206 ई.) का समय लगा।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

प्रशासनिक व्यवस्था

चौहान राज्य में शासन राजतन्त्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत होता था। फिर भी इस वंश के शासक निरकुंश नहीं होते थे। राजा राज्य का प्रधान होता था। राज्य की सभी शक्तियां उसमें निहित होती थी। वह राज्य का सबसे बड़ा कानून निर्माता, शासन प्रबन्धक, सेनापति व न्यायाधीश होता था। राजा विभिन्न तरह की उपाधियां धारण करते थे। राजा शासन को चलाने के लिये युवराज, मन्त्री व बड़े पदाधिकारियों की सलाह लेते थे।

आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था

राज्य की अर्थिक व्यवस्था कृषि आधारित थी। इसके अतिरिक्त उद्योग भी उन्नत थे। कपड़ा, बर्तन, पत्थर की मूर्तियों से सम्बधित उद्योग प्रमुख थे। दिल्ली व आस-पास के राजपूताना क्षेत्र में वर्णाश्रम समाज का मुख्य आधार था। इसके अतिरिक्त उनेक उपजातियां बन चुकी थी। उस समय सती प्रथा व जौहर प्रथा समाज में प्रचलित थी।

चित्र-7.6 पृथ्वीराज चौहान का सिक्का

चित्र-7.7 अजमेर स्थित पृथ्वीराज चौहान का तारागढ़ किला

स्थापत्य कला एवं ललित कला

पृथ्वीराज चौहान एवं राजपूत शासकों ने अपने राज्य की सुरक्षा के लिए विभिन्न भागों में किलों का निर्माण करवाया। जिनमें रायपिथौरा, दिल्ली, अजमेर व हांसी का किला प्रमुख थे। शासकों द्वारा भवन निर्माण कला को प्रोत्साहन दिया गया। इससे स्थापत्य कला व मूर्ति कला का विकास हुआ। इसी कारण इस युग को भारतीय सभ्यता व संस्कृति के इतिहास में एक विशेष स्थान प्राप्त है।

माइंड मैप - विद्यार्थी पुनरावृत्ति करते हुए स्वयं भरें

सुहेलदेव

पृथ्वीराज चौहान

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ जानें, कितना सीखा

सही उत्तर छांटें :

1. चौहान वंश के शासकों ने.............तक शासन किया।
   क) 08 से 11वीं सदी तक   ख) 09 से 12वीं सदी तक
   ग) 10 से 13वीं सदी तक   घ) 07 से 10वीं सदी तक

2. बहराइच के राजा .... के उपासक थे।
   क) सूर्यदेव   ख) भगवान राम
   ग) दोनों अ और ब को   घ) इनमें से कोई नहीं

3. चौहान वंश की राजधानी .... थी।
   क) आगरा   ख) अवध   ग) अजमेर   घ) कश्मीर

4. राजा सुहेलदेव ने सालार मसूद को उसकी सेना के साथ पराजित करने के बाद जीत के उपलक्ष्य में .... बनवाए ।
   क) पोखर   ख) बांध   ग) सड़क   घ) महल

5. पृथ्वीराज .... वर्ष की आयु में सिंहासन पर बैठे।
   अ) 10   ख) 11   ग) 12   घ) 13

रिक्त स्थान की पूर्ति करें :

1. सुहेलदेव .... राज्य के शासक थे।
2. नायकी देवी गुजरात के राजा .... की मां थी।
3. चौहान वंश की प्रारम्भिक राजधानी .... थी।
4. पृथ्वीराजरासो नामक ग्रन्थ का लेखक .... था।
5. तराइन का दूसरा युद्ध .... ई. में हुआ।

निम्नलिखित कथनों में सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाओ :

1. राजा सुहेलदेव ने 1027 ई. से 1077 ई. तक शासन किया।   ( )
2. चौहान राजवंश के संस्थापक का नाम कृष्ण देव चौहान था।   ( )

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

3. पृथ्वीराज चौहान के विषय में जानकारी का एक मात्र स्रोत पृथ्वीराजरासो है। ( )
4. पृथ्वीराज चौहान को राय पिथौरा भी कहा जाता था। ( )
5. सुहेलदेव एवं सालार मसूद के बीच निर्णायक युद्ध का क्षेत्र चित्तौड़ झील से हठीला और अनारकली तक फैला हुआ था। ( )

उचित मिलान करें :

1) प्रशासनिक क्षेत्र	क) सुहेलदेव
2) बहराइच	ख) बहराइच सेना का हमला
3) पृथ्वीराज चौहान	ग) 1191 ई.
4) तराइन का प्रथम युद्ध	घ) 21
5) जून 1034 ई.	ड.) 6 भाषाओं का ज्ञान

लघु उत्तर वाले प्रश्न :

1. राजा सुहेलदेव ने युद्ध में किसे हराया था तथा भारत सरकार ने उनके प्रति किस प्रकार सम्मान व्यक्त किया है?
2. पृथ्वीराज चौहान कौन थे? उनके जीवन तथा कार्यों की जानकारी के मुख्य स्रोत क्या है?
3. पृथ्वीराज चौहान का राज्य कहाँ तक फैला हुआ था? उनके राज्य का प्रशासनिक प्रबंधन किस प्रकार का था?

आइए विचार करें :

1. राजा सुहेलदेव के प्रतिरोध की संक्षेप में व्याख्या करें।
2. पृथ्वीराज चौहान द्वारा अपने साम्राज्य में स्थापित प्रशासनिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाओं के बारे में संक्षेप में व्याख्या करें।
3. तराइन के प्रथम एवं द्वितीय युद्ध का विश्लेषणात्मक वर्णन करें।
4. जून 1034 ई. में सुहेलदेव एवं सालार मसूद के मध्य लड़े गए युद्धों को निर्णायक युद्ध कैसे कह सकते हैं?

आओ करके देखें

1. पृथ्वीराज चौहान द्वारा जीते गये विभिन्न राज्यों की सूची बनाएं एवं मानचित्र पर दर्शाएं।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अध्याय - 8

उत्तर भारत के तेरहवीं से पंद्रहवीं सदी के राज्य

आओ जानें

- तेरहवीं से पंद्रहवीं सदी के दौरान उत्तर भारत के राज्य
- दिल्ली सल्तनत के प्रमुख शासक एवं उनकी प्रशासनिक व्यवस्था
- राजपूत एवं अन्य स्थानीय राज्य एवं उनकी प्रशासनिक व्यवस्था
- तेरहवीं से पंद्रहवीं सदी के प्रमुख राज्यों का स्वरूप

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

उत्तर भारत भौगोलिक दृष्टि से समृद्ध क्षेत्र है। यहां हिमालय से निकलने वाली नदियां इसे समृद्धि प्रदान करती है। समृद्धि से भरे उत्तर भारत के इन क्षेत्रों पर अधिकार करने के लिये काफी शक्तियां प्रयासरत रहती थी। यहां हम तेरहवीं से पंद्रहवीं सदी में दो तरह के राज्यों को देखते हैं। एक स्वतन्त्र रूप से निरन्तर बने हुए राज्य तथा दूसरे दिल्ली सल्तनत की कमजोरी का लाभ उठाकर बने राज्य।

तेरहवीं सदी से पंद्रहवीं में उत्तर भारत के प्रमुख राज्य दिल्ली सल्तनत, मेवाड़, रणथम्भोर, मालवा, गुजरात, जौनपुर व बंगाल आदि थे। लेकिन उस समय इन राज्यों की राजनीतिक नीतियों का ताना–बाना दुर्बल था। आपसी संघर्षों के कारण ये राज्य कमजोर थे। उस समय उत्तर भारत के इन प्रमुख राज्यों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है :

दिल्ली सल्तनत

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

दिल्ली सल्तनत का संस्थापक कुतुबुद्दीन ऐबक था। ऐबक तुर्क आक्रान्ता मोहम्मद गौरी का गुलाम व सेनापति था। मोहम्मद गौरी ने भारत पर कई आक्रमण किए। 1175 ई. में उसने गुजरात पर आक्रमण किया लेकिन यहां के शासक मूलराज ने उसे बुरी तरह हरा दिया। इसके बाद उसने पंजाब पर आक्रमण किया। उसे दिल्ली व अजमेर के शासक पृथ्वीराज तृतीय ने 1191 ई. में तराइन के प्रथम युद्ध में पराजित किया। लेकिन तराइन के दूसरे युद्ध (1192 ई.) में उसने पृथ्वीराज तृतीय तथा 1194 ई. में कन्नौज के युद्ध में यहां के शासक जयचंद को हरा दिया। 1206 ई. में मोहम्मद गौरी की मृत्यु के बाद उसके सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक ने स्वतंत्र राज्य की नींव रखी। यह राज्य दिल्ली सल्तनत कहलाया। वह एक गुलाम था और उसके बाद उसके अनेक उत्तराधिकारी भी अपने जीवन काल में गुलाम रहे थे। अतः ये सभी शासक गुलाम वंश के शासक कहलाए। लाहौर को उसने अपनी राजधानी बनाया। दिल्ली सल्तनत के शासकों ने 1206 ई. से 1526 ई. तक शासन किया। इस दौरान पांच वंशों ने शासन किया। ये वंश इस प्रकार थे :

क्रमांक	वंश	शासनकाल
1.	गुलाम वंश	1206–1290 ई.
2.	ख़िलजी वंश	1290–1320 ई.
3.	तुगलक वंश	1320–1414 ई.
4.	सैयद वंश	1414–1450 ई.
5.	लोधी वंश	1451–1526 ई.

चित्र-8.1 दिल्ली में कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद

दिल्ली के सुल्तानों ने भारत में जिस राज्य को स्थापित किया वह शीघ्र ही एक शक्तिशाली केन्द्रीभूत शासन की इकाई में विकसित हो गया। सैन्य क्षमता के बल पर कोई भी सुल्तान बन सकता था। सुल्तान का पद सल्तनत में केन्द्रीय पद था व कानूनी सत्ता उसी में निहित थी। उसकी नियुक्ति व उत्तराधिकार का कोई नियम नहीं था। सुल्तान वैभवशाली जीवन व्यतीत करते थे।

क्या आप जानते हैं?

दिल्ली में बनी कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद कुतुबुद्दीन ऐबक (प्रथम सल्तनत शासक) द्वारा बनवाई गई। यह भारत की पहली सल्तनतकालीन इस्लामिक इमारत मानी जाती है।

सल्तनत काल के प्रमुख सुलतान :

इल्तुतमिश

दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक शम्सुद्दीन इल्तुतमिश को माना जाता है जिसने लाहौर के स्थान पर दिल्ली को राजधानी बनाया। उसने 1210 ई. से 1236 ई. तक शासन किया। राज्य को संगठित करने व विस्तार देने के लिए उसने चालीस दासों को नियुक्त किया जिसे चालीसा दल कहा जाता था। रणथम्भौर, ग्वालियर और मालवा के शासकों ने उसका विरोध किया। 1226 ई. में रणथम्भौर के शासक वीर नारायण ने उसका मुकाबला किया लेकिन उसने उसे हरा दिया। 1231 ई. में ग्वालियर के शासक मंगलदेव ने इल्तुतमिश का डटकर मुकाबला किया। लेकिन इल्तुतमिश ने ग्वालियर जीत लिया व किले में जाकर 700 निर्दोष लोगों की हत्या कर दी। 1233 ई. नागदा के गुहिलोत व 1234 ई. में गुजरात के सोलंकी शासकों ने इल्तुतमिश को हरा दिया। इसके बाद इल्तुतमिश ने मालवा पर आक्रमण किया व भिलसा नगर के 300 मंदिरों को नष्ट कर दिया। उसने उज्जैन को लूटा व महाकाल के प्राचीन मन्दिर को नुकसान पहुंचाया। उसने सल्तनत को 'इक्ता' नामक प्रशासनिक इकाइयों में बांटकर प्रशासन को संगठित किया। उसने नई मुद्रा व्यवस्था स्थापित की तथा चांदी का सिक्का 'टका' चलाया।

मध्यकालीन इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बर्नी के अनुसार इल्तुतमिश के समय मुस्लिम धार्मिक वर्ग (उलेमा) चाहता था कि हिन्दुओं को इस्लाम अथवा जज़िया के विकल्प की बजाए इस्लाम अथवा मृत्यु का विकल्प दिया जाना चाहिए। वे यह प्रस्ताव लेकर सुल्तान इल्तुतमिश के पास गए। सुल्तान ने अपने मंत्री जुनैदी की ओर देखा। जुनैदी ने स्पष्ट किया कि उलेमा का कथन उचित है पर व्यावहारिक नहीं। मुस्लिम आटे में नामक के बराबर हैं। यदि ऐसा किया गया तो हिन्दू इकट्ठे होकर मुसलमानों को हिंदुस्तान से निकाल देंगे। लेकिन जब हमारी संख्या पर्याप्त हो जाएगी तो हम यही करेंगे। इस उत्तर से उलेमा संतुष्ट हो गए। उपरोक्त विवरण से यह पता चलता है कि सुल्तान इल्तुतमिश एक बुद्धिमान शासक था। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि हिन्दुओं के प्रतिरोध के भय के कारण भारत का पूर्ण इस्लामीकरण नहीं हो पाया था।

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

रज़िया बेगम

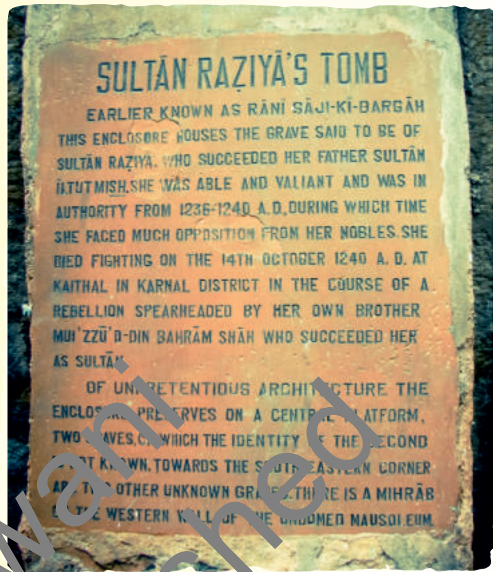

चित्र-8.2 रज़िया सुल्ताना की कब्र पर लगा सूचना पट्ट

इल्तुतमिश की पुत्री रज़िया बेगम एक योग्य, कुशल प्रशासिका, वीरांगना, साहसी और प्रतिभा सम्पन्न सुल्ताना थी। मध्यकाल में सिंहासन पर बैठने वाली वह प्रथम व अन्तिम मुस्लिम स्त्री थी, उसने 1236 ई. से 1240 ई. तक शासन किया। रज़िया ने प्रशासनिक व्यवस्था को सुधारा व प्रजा की भलाई के लिए अनेक कार्य किए। वह पर्दे को त्यागकर पुरुषों के वस्त्र पहनकर राज-संचालन करती थी।

यद्यपि दिल्ली के अमीरों (सरदारों) ने उसे सिंहासन प्राप्त करने में सहयोग दिया था परन्तु फिर भी बहुत से अमीर उसके विरोधी थे। उन्होंने रज़िया को स्त्री होने के कारण सुल्तान मानने से इन्कार कर दिया। अत: कुछ समय पश्चात् मुल्तान, झांसी, लाहौर और बदायूं के सूबेदारों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस अवसर पर उसने बड़ी कूटनीति से काम लिया और आक्रमणकारी सूबेदारों में फूट डलवाकर विद्रोह को दबा दिया। जब लाहौर के सूबेदार कबीर खां ने विद्रोह किया तो रज़िया ने इस विद्रोह को भी दबा दिया।

इसके बाद भटिंडा के सूबेदार अल्तूनिया ने विद्रोह कर दिया और विशाल सेना के साथ दिल्ली पर आक्रमण किया। रज़िया पराजित हुई और अल्तूनिया ने उसे बन्दी बना लिया। रज़िया ने स्थिति को समझते हुए अल्तूनिया से विवाह कर लिया। अब वे दोनों सेना सहित दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के लिए पुन: प्रयास करने लगे परन्तु बहरामशाह ने उन्हें पराजित कर दिया। अल्तूनिया और रज़िया भागने में सफल हो गये लेकिन 1240 ई. में कैथल के समीप कुछ विद्रोहियों ने उनका वध कर दिया। रज़िया के मकबरे के अवशेष कैथल शहर में आज भी है।

चित्र-8.3 रज़िया सुल्ताना के मकबरे के अवशेष - कैथल, हरियाणा

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

बलबन

गुलाम वंश के सुल्तानों में बलबन सर्वाधिक प्रसिद्ध था। उसका सम्बन्ध तुर्क वंश के इल्बारी कबीले से था। बलबन एक अत्यंत महत्वाकांक्षी और अवसरवादी व्यक्ति था। इसी अवसर वादिता के कारण उसने गुलाम से शासक तक का सफर तय किया। वह इल्तुतमिश के शासन काल में अपनी योग्यता के बल पर चालीसा में शामिल हुआ। रज़िया के शासन काल में बलबन अमीर-ए-शिकार (शाही शिकार का प्रबन्धक) के महत्वपूर्ण पद पर पहुंच गया था। उसने रज़िया को अपदस्थ करवाने तथा बहरामशाह को सुल्तान बनाने में सक्रिय योगदान दिया। अत: बहरामशाह ने बलबन की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे अमीर-ए-आखुर (शाही अश्वशाला का प्रधान) के पद पर नियुक्त किया तथा उसे रेवाड़ी व हांसी की जागीरें भी दी।

बलबन के प्रयास से 1246 ई. में नासिरुद्दीन महमूद दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसके शासन काल में बलबन का महत्व और भी बढ़ गया। सुल्तान ने उसे अपना वजीर (प्रमुख मंत्री) नियुक्त किया। अत: राज्य की समस्त शक्तियां व्यावहारिक रूप से बलबन के हाथ में आ गई। 1266 ई. में सुल्तान नासिरुद्दीन की मृत्यु अथवा हत्या के पश्चात् बलबन स्वयं सुल्तान बन गया।

उसने 1286 ई. तक शासन किया। दिल्ली के निकट मेवात क्षेत्र के लोगों ने बलबन का विरोध किया। इनके विरोध से बलबन बहुत चिन्तित हुआ। उसने मेवातियों पर बड़ी सेना के साथ आक्रमण किया और उन्हें बड़ी संख्या में मौत के घाट उतार दिया। इस क्षेत्र में सैनिक चौकियां स्थापित करवाई ताकि वे पुनः सिर न उठा सकें। कटेहर के लोगों ने भी बलबन का विरोध किया था। इन लोगों पर भी बलबन ने बहुत अत्याचार किए। गांव के गांव उजाड़ दिए गए। सभी युवकों को मार डाला गया और महिलाओं और बच्चों को गुलाम बनाकर बेच दिया गया। बलबन ने क्रूरता के साथ अपनी सत्ता स्थापित की थी। उसने अपने विरोधियों से कठोरता से व्यवहार किया। उसने दिल्ली सल्तनत की सेना का पुनः गठन किया। चालीस सरदारों (चालीसा) के संगठन को प्रभावहीन किया। जो सुल्तान इल्तुतमिश के समय बनाया गया था। उसने दरबार में प्रचलित नियमों का कड़ाई से पालन करवाया। उसने अमीरों को सिजदा तथा पाबोस की प्रथाओं को मानने के लिए बाध्य किया। उसने राज्य के उच्च पदों पर केवल मुस्लिम कुलीन परिवार के सदस्यों को नियुक्त किया।

- **सिजदा-** घुटने पर बैठकर सुल्तान के सामने सर झुकाना
- **पाबोस -** सुल्तान के कदमों को चूमना

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

जलालुद्दीन व अलाउद्दीन ख़िलजी

1290 ई. में गुलाम वंश के अंतिम शासक कैकुबाद की उसके एक अमीर सरदार जलालुद्दीन ख़िलजी ने हत्या करके ख़िलजी वंश की स्थापना की। 1296 ई. में जलालुद्दीन ख़िलजी की मृत्यु के बाद उसका भतीजा अलाउद्दीन खिलजी शासक बना। वह ख़िलजी वंश के सबसे शक्तिशाली शासक था। अलाउद्दीन ख़िलजी भी अवसरवादी और धन का लालची था। उसने विस्तारवादी नीति अपनाई।

सुल्तान बनने से पूर्व जलालुद्दीन कैथल का प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी था। यहां मंढार सरदारों ने तुर्कों का डटकर विरोध किया था। एक लड़ाई में एक मंढार सरदार ने तलवार से जलालुद्दीन के चेहरे पर ऐसा घाव दिया जिसे वह जीवन भर न भुला सका। सुल्तान बनने के बाद जलालुद्दीन ने उसे दरबार में बुलाया और इनाम दिया। दरबारी बहुत आश्चर्यचकित थे लेकिन जलालुद्दीन ने उन्हें बताया कि मैंने अनेक लड़ाइयां लड़ी लेकिन इस मंढार जैसा वीर नहीं देखा।

अलाउद्दीन ख़िलजी ने गुजरात, रणथम्भौर, मेवाड़, मालवा आदि पर अनैतिक उपायों से विजय प्राप्त की और लूटमार करके बड़ी मात्रा में धन प्राप्त किया। इसी प्रकार मलिक काफूर नामक सेनापति की सहायता से दक्षिण भारत में वारंगल, देवगिरि, द्वारसमुद्र व मदुरा आदि राज्यों को जीता।

अलाउद्दीन ख़िलजी ने अनेक कानून व आर्थिक नियम बनाये परन्तु वे उसके जीवन के साथ ही समाप्त हो गए। हिंदू बहुल क्षेत्रों का उसके काल में बड़ा शोषण हुआ। अलाउद्दीन ख़िलजी के उत्तराधिकारी काफी कमजोर निकले।

खुसरो खान का अल्प शासनकाल : 1320 ई. में ख़िलजी वंश के अंतिम शासक मुबारक खां की उसके ही वजीर खुसरो ने हत्या कर दी। अपने अल्पकालीन शासन काल में खुसरो खान ने गोवध पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया। यह धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टि से महत्वपुर्ण था क्योंकि भारत में कृषि एवं माल ढुलाई पूर्णत: बैलों पर आधारित थी। 1320 ई. में ही दीपालपुर के सूबेदार गाज़ी मलिक ने खुसरो की हत्या कर दी और स्वयं ग्यासुद्दीन तुगलक के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया।

मोहम्मद-बिन-तुगलक

मोहम्मद-बिन-तुगलक की गणना दिल्ली सल्तनत के महत्वपूर्ण सुल्तानों में की जाती है। उसका वास्तविक नाम जूना खां था। 1325 ई. में अपने पिता ग्यासुद्दीन तुगलक की मृत्यु के बाद वह स्वयं मोहम्मद-बिन-तुगलक के नाम से सिंहासन पर बैठा। उसने राज्य के सरदारों तथा प्रजा का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से अपार धन लुटाया। उसने 1351 ई. तक शासन किया। उसने अपने राज्य को 23 सूबों में बांटा हुआ था।

मोहम्मद-बिन-तुगलक नई-नई योजनाएं बनाने तथा उन्हें लागू न करा पाने के लिए प्रसिद्ध था। उसकी योजनाओं के कारण लोगों को घोर कष्टों का सामना करना पड़ा। उसकी योजनाएं व्यावहारिक कम तथा काल्पनिक अधिक मानी जाती थी।

क्या आप जानते हैं?

मोहम्मद-बिन-तुगलक दर्शन शास्त्र, खगोल विज्ञान, गणित व भौतिक विज्ञान का विद्वान था। वह तुर्की, संस्कृत, फारसी व अरबी भाषा का अच्छा जानकार था।

उसकी मृत्यु पर कहा गया है कि सुल्तान को प्रजा से और प्रजा को सुल्तान से मुक्ति मिल गई।

मोहम्मद-बिन-तुगलक की प्रशासनिक योजनाएं

1 **राजधानी परिवर्तन 1327 ई.-1329 ई. :** मोहम्मद-बिन-तुगलक की प्रथम महत्पूर्ण योजना अपनी राजधानी को दिल्ली से देवगिरि में परिवर्तित करना था। देवगिरी का नाम बदल कर दौलताबाद रखा गया। देवगिरी उसके राज्य के मध्य में थी। सुल्तान यहां के उन्नत व्यापार, कृषि उत्पादन तथा अच्छी

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

जलवायु से प्रभावित था लेकिन नई राजधानी में मौलिक संसाधनों का अभाव था जिससे यह योजना असफल रही। पुनः दिल्ली राजधानी बनाई गयी।

2 **गंगा-यमुना के दोआब में कर वृद्धि :** सुल्तान द्वारा दोआब क्षेत्र में कर वृद्धि की गई ताकि राज्य की आय में अभिवृद्धि हो सके। लेकिन उसी दौरान इस क्षेत्र में भीषण अकाल पड़ गया। किसान कर न दे सके। अतः उन्होंने इस योजना का विरोध किया परन्तु अधिकारियों ने असहाय किसानों पर शक्ति का प्रयोग कर भू-राजस्व देने के लिए बाध्य किया, जिससे किसानों ने विद्रोह कर दिया। जब सुल्तान ने सेना भेजी तो बहुत से लोग मारे गए और शेष अपनी भूमि को छोड़ कर अपने परिवारों सहित वनों में भाग गए। इस योजना से राज्य को आर्थिक हानि हुई।

3 **सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन (1330 ई.-1332 ई.) :** मोहम्मद-बिन-तुगलक की तीसरी महत्वपूर्ण योजना सांकेतिक मुद्रा प्रणाली का प्रचलन था। सुल्तान ने चांदी के टके के स्थान पर तांबे के सिक्के चलाए। नए सिक्कों का मूल्य चांदी के सिक्के के बराबर कर दिया। लेकिन शाही टकसालों की अव्यवस्था के कारण योजना असफल हो गई। लोगों ने घरों में ही नकली सिक्के बनाने शुरू कर दिए। अतः सुल्तान को पुनः पुरानी व्यवस्था अपनानी पड़ी। परिणामस्वरूप सुल्तान की प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा।

4 **कृषि सुधार की योजना (1330 ई.) :** मोहम्मद-बिन-तुगलक ऊसर भूमि को कृषि योग्य बना कर फसलों की उपज में वृद्धि करना चाहता था। इस उद्देश्य के लिए उसने 'दीवान-ए-अमीर-कोही' नामक कृषि विभाग स्थापित किया। उसने उत्तम प्रकार की फसलों के परीक्षणों पर दो वर्षों में सत्तर लाख रुपए व्यय कर दिए परन्तु सुल्तान की यह वैज्ञानिक योजना भी पूरी तरह असफल रही।

5 **खुरासान एवं कराचिल विजय की योजना (1332 ई.-1333 ई.) :** मोहम्मद-बिन-तुगलक विश्व-विजेता बनने का सपना देख रहा था अतः उसने खुरासान को जीतने की योजना बनाई। विशाल सेना का गठन किया गया। सैनिकों को दो साल का अग्रिम धन भी दिया गया। लेकिन खुरासान पर आक्रमण न किया जा सका। सुल्तान से इस सेना को कराचिल (कुमाऊं) क्षेत्र को जीतने के लिए भेज दिया लेकिन इस पहाड़ी क्षेत्र के लोगों ने सेना का डटकर विरोध किया। कहा जाता है की इस अभियान में गए लगभग एक लाख घुड़सवारों में से केवल कुछ ही सैनिक जीवित लौटे। सैनिक प्रशिक्षण तथा सैन्य संसाधनों के लिए सुल्तान को भरी कर्ज उठाना पड़ा था जिससे राज्य को बड़ा आर्थिक नुकसान हुआ।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

मोहम्मद-बिन-तुगलक में बहुत से गुण विद्यमान थे। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि इतने गुणवान सुल्तान को भला विफलता का मुख क्यों देखना पड़ा। इन योजनाओं के परिणाम राज्य के लिए बहुत घातक सिद्ध हुए जो तुगलक साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण बनी।

फिरोजशाह तुगलक

मोहम्मद-बिन-तुगलक के बाद 1351 ई. में उसका चचेरा भाई फिरोजशाह तुगलक़ सुल्तान बना। नगरकोट के राजा ने उसका विरोध किया तो उसने उस पर आक्रमण कर दिया व माता ज्वालामुखी के मन्दिर को नुकसान पहुंचाया। सिंध के शासक जाम ने भी उसका विरोध किया। जब फिरोजशाह तुगतक ने इस पर आक्रमण किया तो जाम ने उसका डटकर मुक़ाबला किया। फिरोजशाह तुगतक एक धर्मान्ध शासक माना जाता है। पूर्ववर्ती सुल्तान ब्राह्मणों के अतिरिक्त बाकी हिन्दुओं से जज़िया कर लेते थे परन्तु उसने ब्राह्मणों पर भी जज़िया कर लगाया था। उसके काल में सल्तनत की सैन्य व्यवस्था में कमजोरी आई जो उसके वंश के लिए घातक सिद्ध हुई।

सिंध के शासकों ने तुगलक वंश के शासकों का लगातार विरोध किया। मोहम्मद तुगलक ने अपने शासन काल के अंतिम वर्षों में सिंध पर आक्रमण किया लेकिन वह उसे जीत न सका। फिरोजशाह तुगलक ने शासक बनने के बाद सिंध व थट्टा को जीतने का प्रयास किया लेकिन उसे वहां के लोगों के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। राजधानी दिल्ली से उसकी सेना का संपर्क छः महीने तक टूटा रहा। बड़ी मुश्किल से वह दिल्ली वापस लौट पाया। सिंध में एक कहावत बन गई - देखो शेख परम्परा का कमाल! एक तुगलक़ गया (मर गया) दूजे को हरा सम्भाल।

सैयद एवं लोधी वंश

1398 ई. में तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया व दिल्ली से तुगलक वंश की सत्ता नष्ट कर दी। उसका एक सेनापति खिज्र खान जब दिल्ली का सुल्तान बना तो उसके वंशज सैयद वंश के शासक कहलाये। लेकिन 1451 ई. में सैयद वंश के अंतिम शासक अल्लाउद्दीन आलमशाह को बहलोल लोदी ने हटाकर लोधी वंश की नींव रखी। लोधी वंश में बहलोल लोधी के बाद सिकन्दर लोदी 1489 ई. में सुल्तान बना। उसने ही आगरा नगर की नींव रखी थी। 1517 ई. में उसकी मृत्यु के बाद इब्राहिम लोधी सुल्तान बना जिसे 1526 ई. में बाबर ने पानीपत के युद्ध में हरा दिया तथा दिल्ली सल्तनत को समाप्त कर दिया ।

सल्तनत राज्य का स्वरूप

1 **शासन व्यवस्था :** दिल्ली के सुल्तानों की निरंकुश राजतंत्रीय शासन व्यवस्था थी। सुल्तान शासन के सर्वेसर्वा थे। सुल्तान की शक्तियों पर कोई प्रतिबंध नहीं था। वे राज्य के प्रमुख न्यायाधीश, सेनापति व उच्च अधिकारी भी थे। उनका निर्णय अंतिम था।

©BSEH Bhiwani Not to be republished

2 **राज्य के अन्य अधिकारी :** अपने प्रशासनिक कार्य को सही ढंग से चलाने के लिए सुल्तान अन्य राजकीय पदाधिकारियों की सहायता लेता था। इनमें प्रमुख थे – वजीर, 'दीवान-ए-विजारत', 'सद्र-उस-सुदूर', 'दीवान-ए-रसालत' और 'दीवान-ए-कज़ा' (दान और न्याय), 'आरीज़-ए-मुमालिक', 'दीवान-ए-अर्ज़' और दबीरे खास, 'दीवाने-इन्शा' (पत्राचार) विभाग थे।

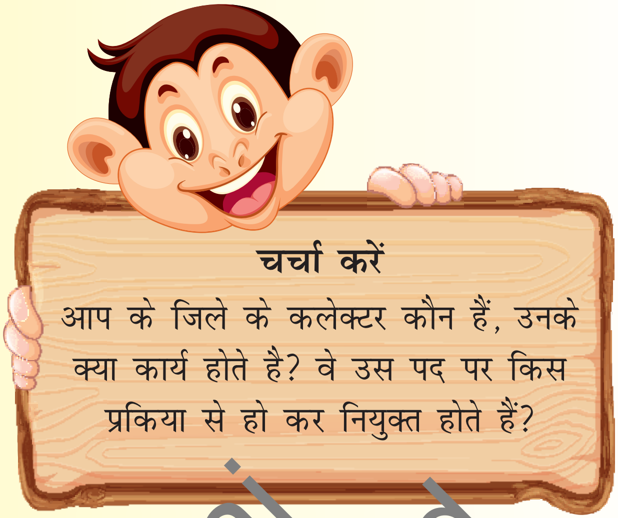

3 **प्रांतीय प्रशासन :** दिल्ली सल्तनत कई इक्तों (प्रांत) में बंटी हुई थी। सुल्तान अपनी इच्छानुसार इक्तों की संख्या को कम या ज्यादा करते रहते थे। इक्ता का शासन-प्रबंध इक्तादार के जिम्मे था। इक्ता, शिकों में बंटे थे। शिक का शासन प्रबंधक शिकदार होता था। गांव शासन की सबसे छोटी इकाई थी। प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति सुल्तान स्वय करता था।

4 **सैन्य-संगठन :** दिल्ली सुल्तानों की सारी शक्ति सेना पर निर्भर करती थी। उनका अधिकांश समय युद्ध या युद्ध-सम्बन्धी कार्यों में ही व्यतीत होता था। घोड़, पैदल तथा हाथी उनकी सेना के तीन प्रधान अंग थे। सेना का प्रमुख सुल्तान ही होता था। सैन्य संगठन के सभी अधिकारियों की नियुक्ति सुल्तान ही करता था।

5 **न्याय-प्रबंधन :** न्याय के क्षेत्र में भी सुल्तान सर्वोच्च न्यायाधीश था। फिर भी न्याय करने के लिए राज्य में काज़ी, मुमालिक, अमीरेदाद, हजीब आदि होते थे। न्यायिक व्यवस्था धर्म-आधारित थी। काज़ी प्रमुख न्यायाधिकारी होता था। न्याय करते समय धार्मिक भेदभाव भी किया जाता था।

6 **सामाजिक व्यवस्था :** सल्तनतकाल में भारतीय समाज स्पष्टत: दो वर्गों में बंटा था-हिन्दू समाज और मुस्लिम समाज। हिन्दू देश की बहुसंख्यक प्रजा थे परन्तु शासन में उनकी भागीदारी नहीं थी। हिन्दुओं में अधिकांश कृषक थे। हिन्दुओं को सदा कुचले जाने का भय रहता था। मुस्लिम समाज की स्थिति कुछ अच्छी थी। वे राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त होते थे। हिन्दुओं से मुसलमान बन गए लोगों को भी कोई बड़े पद अथवा अधिकार नहीं मिलते थे। हिन्दुओं से प्रभावित होकर मुस्लिम समाज भी कई वर्गों में बंट गया था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

सल्तनत काल के प्रमुख अधिकारी

अधिकारी	विभाग
दीवान-ए-विजारत	राजस्व विभाग
सद्र-उस-सुदूर	धर्म एवं राजकीय दान विभाग
दीवान-ए-रसालत	विदेश विभाग
दीवान-ए-अर्ज़	सैन्य विभाग
आरीज-ए-मुमालिक	सेना मंत्री

स्थानीय राज्य

बंगाल

बंगाल अपने अतिरिक्त आंतरिक साधनों और विदेशी व्यापार के कारण अपनी सम्पत्ति के लिए प्रसिद्ध था। 750 ई. से यहां पालवंश के राजा शासन कर रहे थे। विदेशी आक्रांता के रूप में बंगाल को सबसे पहले मोहम्मद गौरी के सेनानायक मोहम्मद बिन- बख्तियार ख़िलजी ने 1204 ई. में जीता। वह घोड़ों के एक सौदागर के रूप में अचानक बंगाल की राजधानी नदिया पहुंचा और उसने धोखे से राजमहल पर आक्रमण किया। यहां का राजा लक्ष्मणसेन घबरा कर भाग गया और बख्तियार ख़िलजी बंगाल के बड़े भाग का शासक बन गया। उसने लखनौती को अपनी राजधानी बनाया।

मानचित्र-8.1 – तेरहवीं से पंद्रहवीं सदी के राज्य

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

उसने असम पर आक्रमण किया परन्तु वह केवल 100 सैनिकों के साथ ही जीवित लौट सका। परिणामस्वरूप उसके अपने साथियों ने ही उसकी हत्या कर दी। 1225 ई. में इल्तुतमिश ने भी बंगाल को अपने अधिकार में कर लिया परन्तु उसके बाद बंगाल पुनः स्वतंत्र हो गया क्योंकि दिल्ली से बहुत दूर होने के कारण बंगाल पर केन्द्रीय नियंत्रण रखना कठिन होता था। बलबन ने अपने शासन काल के दौरान यहां तुगरिल बेग के विद्रोह को दबाकर अपने पुत्र बुगरा खां को सूबेदार नियुक्त किया। बाद में बुगरा खां ने अपने आप को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और उसके वंशज बंगाल पर शासन करने लगे।

ग्यासुद्दीन तुगलक ने 1324 ई. में बंगाल पर आक्रमण किया और बुगरा खां के वंशज नसिरुद्दीन ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। मोहम्मद तुगलक के शासन-काल के अन्तिम दिनों में हाजी इलियास बंगाल का शासक बना और 1357 ई. में हाजी इलियास की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सिकन्दर शाह गद्दी पर बैठा और उसने 1393 ई. तक राज किया।

सिकन्दर शाह की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र आजम खां ने 1393 ई. से 1409 ई. तक राज किया। उसने चीन के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किए। आजम खां का उत्तराधिकारी सैफुद्दीन हम्ज़ा शाह एक अयोग्य शासक था। उसके समय में दीनाजपुर के राजा गणेश दनुर्जनदेव ने बंगाल की गद्दी पर अधिकार कर लिया।

1442 ई. तक उसके उत्तराधिकारी बंगाल पर शासन करते रहे। उसके बाद इलियास के वंशज इस्लाम शाह ने पुनः बंगाल पर अधिकार कर लिया। उसके वंशजों ने 1487 ई. तक बंगाल पर शासन किया। उसके बाद कुछ समय तक बंगाल पर अबीसीनियाई सरदारों का नियंत्रण रहा। 1493 ई. में हुसैन शाह ने बंगाल पर अधिकार करके हुसैन शाही वंश की नींव डाली। वह साहित्य और कला का पोषक था।

गुजरात

गुजरात पश्चिम भारत का एक समृद्धशाली राज्य था। तेरहवीं सदी में गुजरात में बीसलदेव ने बघेल वंश की सत्ता स्थापित की। अलाउद्दीन ख़िलजी ने 1297 ई. में बघेल वंश के राजा करणदेव पर आक्रमण करके उसे हरा दिया। कुछ वर्षों के विद्रोहों के पश्चात् मलिक काफूर की सहायता से 1310 ई. में उसके राज्य को दिल्ली सल्तनत में मिला लिया गया। उस समय से लेकर 1398 ई. में तैमूर के आक्रमण तक गुजरात दिल्ली सल्तनत के अधीन एक प्रदेश बना रहा।

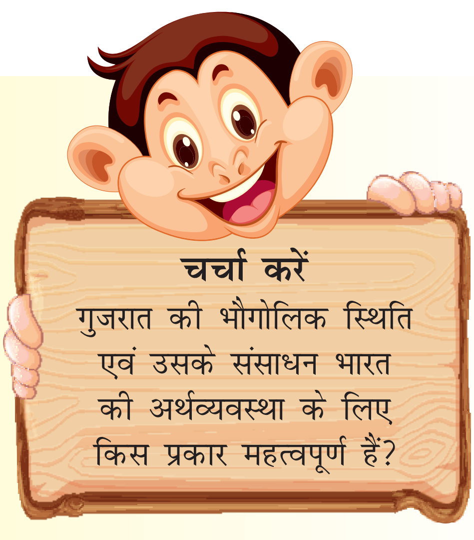

तैमूर के आक्रमण के पश्चात् गुजरात के सूबेदार ज़फर खां ने तुगलक साम्राज्य में फैली अव्यवस्था का लाभ उठाया और 1401 ई. में अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। 1411 ई. में अहमदशाह गुजरात का शासक बना। उसने 1442 ई. तक राज्य किया। उसने गुजरात की सीमाओं का विस्तार किया। उसने हिन्दुओं को धर्म बदलकर मुसलमान बनने के लिए प्रोत्साहित किया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

कुछ वर्षों के बाद महमूद बेगड़ा गुजरात का शासक बना। उसने 53 वर्ष (1458 ई. – 1511 ई.) तक राज किया। अपने इस लम्बे शासन-काल में उसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की। उसने जूनागढ़, सूरत और कच्छ को जीत कर अपने राज्य में मिलाया। 1484 ई. में उसने चम्पानेर पर भी अधिकार कर लिया। उसने एक जलसेना का भी निर्माण किया और पुर्तगालियों के विरुद्ध सफल युद्ध किए।

मेवाड़

मेवाड़ राजपूतों का एक प्रमुख राज्य था। इसकी राजधानी चित्तौड़ थी। 1303 ई. में दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और राजा रतनसिंह व उसके बहादुर सेनापतियों गोरा व बादल को पराजित करके मेवाड़ की राजधानी चितौड़ पर अधिकार कर लिया।

अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ पुनः स्वतंत्र हो गया। राणा हमीर ने 1324 ई. से 1364 ई. तक राज किया। उसके शासन काल में मेवाड़ ने बहुत प्रगति की। उसके बाद क्षेत्र सिंह वहां का शासक बना और उसने 1382 ई. तक शासन किया। क्षेत्र सिंह के बाद लाखा सिंह व मोकल सिंह शासक बने। जिसने 1432 ई. तक शासन किया। मोकल सिंह ने कविराज वाणी विलास और योगेश्वर नामक विद्वानों को आश्रय प्रदान किया।

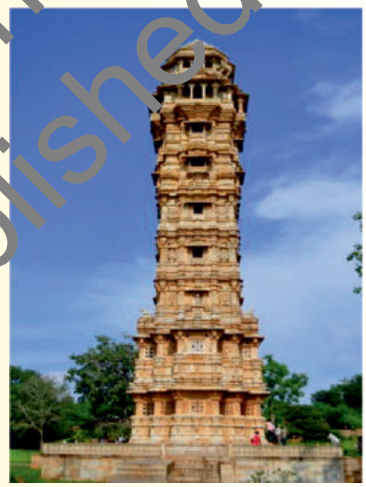

चित्र-8.4 चितौड़गढ़ का विजय स्तंभ

1433 ई. में राणा कुम्भा (1433 ई.-1468 ई.) मेवाड़ का शासक बना। वह एक वीर एवं साहसी योद्धा और सफल सेनानायक था। उसने मेवाड़ की सेना को संगठित किया और सीमाओं पर दुर्गों का निर्माण करवाया। विजय स्तम्भ उसकी प्रमुख अमरकृति है। कुंभलगढ़ का दुर्ग भी विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

उसने मालवा और गुजरात व अन्य शासकों के विरुद्ध सफल युद्ध किए। राणा कुम्भा की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में गृहयुद्ध शुरू हो गया। इस संघर्ष के अन्त में संग्रामसिंह को सफलता मिली। उसके शासन काल (1509 ई.-1528 ई.) में मेवाड़ अपने विकास की चरम सीमा तक पहुंचा।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते हैं?

मेवाड़ राज्य की राजधानी चितौड़गढ़ के नाम से जानी जाती थी। मेवाड़ की धरती राजपूती प्रतिष्ठा, मर्यादा एवं गौरव का प्रतीक रही है। गुहिलोत और सिसोदिया वंश के राजाओं ने लगभग 1200 वर्ष तक मेवाड़ राज्य पर शासन किया।

जौनपुर

1398 ई. में भारत पर तैमूर के आक्रमण के बाद जौनपुर के राज्य की स्थापना ख्वाजा जहां नामक एक व्यक्ति ने की थी जो तुगलक वंश के दिल्ली के सुल्तानों का एक अधिकारी था। उसे मलिक-उ-शर्क की उपाधि मिली हुई थी। उसके वंशज 'शर्की' वंश के शासक कहलाये। 1399 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उसका दत्तक पुत्र मलिक करनफूल मुबारक शाह 'शर्की' की उपाधि धारण करके गद्दी पर बैठा। अल्पकालीन शासन के बाद 1402 ई. में मुबारक शाह की मृत्यु हो गई और इब्राहिम शाह शर्की उसका उत्तराधिकारी बना।

वह शर्की वंश का सबसे योग्य शासक था तथा कला एवं साहित्य को आश्रय देता था। यहां सुन्दर भवनों का निर्माण करवाया गया जिन पर हिन्दू वास्तु कला का स्पष्ट प्रभाव था तथा साधारण ढंग की मीनारों से रहित मस्जिदें बनवाकर इस नगर को अलंकृत किया गया। उसका दरबार अनेक विद्वानों से सुशोभित था तथा उस समय भारतीय ग्रंथों का फारसी में अनुवाद भी किया गया। अत: सांस्कृतिक व धार्मिक उपलब्धियों के कारण जौनपुर उस समय 'पूर्व का शिराज' कहलाने लगा।

इब्राहिम शाह शर्की के बाद पुत्र महमूद शाह, मोहम्मद शाह तथा हुसैनशाह शासक बने। प्रारम्भिक सफलताओं के पश्चात् हुसैनशाह, बहलोल लोदी से हार गया तथा उसके राज्य जौनपुर को दिल्ली सल्तनत में मिला लिया गया। बहलोल ने अपने पुत्र बारबक को जौनपुर का शासक नियुक्त किया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

मालवा

मालवा पर 13वीं शताब्दी के अंत तक परमार वंश के राजाओं का शासन था। उनकी राजधानी धार थी। 1305 ई. में अलाउद्दीन ख़िलजी ने मुल्तान के सूबेदार आईन-उल-मुल्क के नेतृत्व में वहां के लिए एक सेना भेजी। इस युद्ध में मालवा का शासक महलक देव पराजित हो गया। मालवा पर अब अलाउद्दीन ख़िलजी ने अधिकार कर लिया था। तब से 1398 ई. तक यह दिल्ली के अधीन रहा। तैमूर के आक्रमण के समय यह अन्य प्रान्तों की तरह स्वतंत्र हो गया।

1406 ई. में दिल्ली की सल्तनत से व्यावहारिक रूप में स्वतंत्र हो कर दिलावर खां, मालवा का शासक बना। 1407 ई. में उसके बाद उसका महत्वाकांक्षी पुत्र अल्प खां, हुशंग शाह के नाम से सिंहासन पर बैठा। उसने धार के स्थान पर माण्डू को अपनी राजधानी बनाया। 1422 ई. में उसने उड़ीसा पर अचानक आक्रमण किया और उसने वहां के राजा को 75 (पचहत्तर) हाथी व बहुत सारा धन देने पर विवश किया। उसने खेरला, दिल्ली, जौनपुर एवं गुजरात के शासकों के विरुद्ध भी युद्ध किए। 1435 ई. उसका बड़ा पुत्र गाजी खां, मोहम्मद शाह के नाम से, मालवा का सुल्तान बना। वह एक अयोग्य शासक था। 1436 ई. में उसके मन्त्री महमूद ख़िलजी ने उसका वध करके गद्दी हड़प ली। इस प्रकार मालवा में ख़िलजी सुल्तानों का वंश स्थापित हुआ।

महमूद ख़िलजी ने गुजरात, दिल्ली, बहमनी एवं मेवाड़ के शासकों के विरुद्ध युद्ध किए। मेवाड़ के राणा के साथ 1437 ई. में सारंगपुर के युद्ध में वह हार गया। इस विजय की स्मृति में मेवाड़ के राजा ने चित्तौड़ में, 'विजय-स्तंभ' बनवाया। निःसन्देह महमूद ख़िलजी मालवा के मुस्लिम शासकों में सबसे अधिक योग्य था। उसने अपने राज्य की सीमाओं को दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत श्रेणी तक, पश्चिम में गुजरात की सरहद तक, पूर्व में बुन्देलखण्ड तक तथा उत्तर में मेवाड़ एवं हैराती तक बढ़ाया। उसने माण्डू में एक सात मंजिला स्तम्भ भी बनवाया। 1469 ई. में माण्डू में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके उत्तराधिकारी अयोग्य थे। धीरे-धीरे मालवा साम्राज्य का पतन होता चला गया। महमूद ख़िलजी का पुत्र गियास शाह मालवा का अन्तिम शासक था।

रणथम्भौर

राजपूतों के राज्यों में रणथम्भौर प्रमुख राज्य था और 13वीं शताब्दी के आरम्भिक समय तक अपनी विशाल हिन्दू विरासत को सहेजे हुए था। मगर 1227 ई. में मानों इसे ग्रहण लग गया और इल्तुतमिश ने चौहान शासक वीरनारायण को पराजित करके उस पर अधिकार कर लिया लेकिन कुछ ही वर्षों के बाद राणा हम्मीर देव यहां शासन स्थापित करने में सफल हो गया। 1301 ई. में अलाउद्दीन ख़िलजी ने राणा हम्मीर देव को षडयंत्र से हरा दिया गया। यहां अलाउद्दीन के सैनिकों ने खूब लूट-मार की और अनेक मंदिरों को तोड़ दिया गया। 15वीं शताब्दी के अंतिम दशक में इसे दिल्ली सल्तनत के अधीन कर लिया गया।

चर्चा करें

रणथम्भौर अपने ऐतिहासिक महत्व और अपने किले के लिए प्रसिद्ध है। वर्तमान में यह एक राष्ट्रीय उद्यान के लिए भी जाना जाता है, इसके बारे में खोजें और एक संक्षिप्त नोट लिखें।

क्या आप जानते हैं?

रणथम्भौर का किला एक पहाड़ी पर बना हुआ है। इस किले का निर्माण राजा सज्जन सिंह नागिल ने करवाया था। इसके सात द्वार हैं। किले में 84 स्तंभों वाला बड़ा सभा स्थल बना है। यह किला तीन मंजिला इमारत है। इसमें 32 खम्बे हैं जो छत्रियों और गुंबदों को सहारा देते हैं। अकबरनामा के लेखक अबुल फ़ज़ल ने इस दुर्ग के बारे में कहा कि यह कवच के समान प्रतीत होता है।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

स्थानीय राज्यों का स्वरूप

तेरहवीं सदी में अनेक स्थानीय राज्यों पर राजपूत वंश के राजाओं का शासन था। इनमे मेवाड़, गुजरात, मालवा व रणथंभौर थे।

1

शासन व्यवस्था : राजपूत राज्य सामन्तवादी प्रथा पर आधारित थे। राजपूत राज्य कई जागीरों में बंटे हुए थे। वे जागीरदार व सामन्त राजा के प्रति व्यक्तिगत श्रद्धा से जुड़े होते थे। संकट के समय ये राजा की सहायता करते थे। सामन्त नियमित रूप से राजा को वार्षिक कर देते थे। राजा को असीमित अधिकार प्राप्त थे। वह अपने राज्य का सर्वोच्च अधिकारी, प्रमुख सेनापति और मुख्य न्यायाधीश होता था। निरंकुश होते हुए भी राजा प्रजा की रक्षा तथा जन-कल्याण के कार्य करना अपना कर्तव्य समझते थे। इन्ही राजाओं एवं शासकों के आपस में लड़ने के कारण इनके राज्यों का पतन हुआ।

2

सैनिक व्यवस्था : राजपूतों का सैनिक संगठन विशेष प्रकार का होता था। राजा की व्यक्तिगत सेना कम होती थी। सामन्तों की संयुक्त सेना पर राजा की शक्ति निर्भर थी। राजपूत सेना में पैदल, घुड़सवार और हाथी होते थे। राजपूत युद्ध करना अपना कर्तव्य समझते थे। ये युद्ध कौशल में निपुण होते थे।

3

न्याय व्यवस्था : दण्ड-विधान कठोर था। धर्मशास्त्रों और परम्पराओं के अनुसार न्याय किया जाता था। न्यायिक व्यवस्था हिन्दू परम्परा पर आधारित थी। राजा अपने राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था।

4

सामाजिक जीवन : इस काल में वर्ण व्यवस्था पर आधारित समाज कई जातियों और उपजातियों में विभाजित था। ब्राह्मणों का समाज में उच्च स्थान था। वे राजपूत राजाओं के पुरोहित और मंत्री होते थे। रक्षा का भार क्षत्रियों पर होता था। वे शासक और सैनिक होते थे। वैश्य व्यापार करते थे। शूद्र वर्ग के लोग अन्य सेवा का कार्य करते थे। समाज में जाति का महत्व था। शुद्ध शाकाहारी भोजन अच्छा समझा जाता था।

5

अर्थव्यवस्था : राज्यों की आय का मुख्य आधार कृषि था। यहां मौसम के अनुसार रबी तथा खरीफ की फसलों को उगाया जाता था जैसे गेहूं, धान, चना, मटर, दालें, कपास, ज्वार, बाजरा, फल, सब्जी इत्यादि। भूमि को उपज के आधार पर उर्वरा, बंजर, खिल्ल तथा मरू आदि प्रकारों में बांटा गया था। सिंचाई के लिए नहरें, कुएं, तालाब, झीलें आदि का प्रयोग किया जाता था। सामान्यत कृषि प्रकृति अर्थात वर्षा पर निर्भर थी। पशु पालन भी प्रमुख व्यवसाय था।

वस्तु विनियम अर्थ व्यवस्था का आधार था। इस काल में सूती वस्त्र उद्योग प्रमुख था। इसके अतिरिक्त ऊनी, रेशमी वस्त्र भी प्रयोग में लाये जाते थे। सिक्के, बर्तन, मूर्तियां, आभूषण आदि भी विभिन्न धातुओं के बनाये जाते थे।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

6

कला : राजपूत राजा महान निर्माता थे। उन्होंने अनेक मन्दिर, किले, बांध, जलाशय और स्नानागार बनवाए। सूर्य, विष्णु, शिव आदि की विभिन्न मुद्राओं में अनेक मूर्तियों का निर्माण किया गया। उस समय राजपूत हिन्दू धर्म परम्परा को अपनाए हुए थे। उनके दुर्ग एवं किले बहुत मजबूत थे। अतः ये राज्य खुशहाल थे। आर्थिक रूप से गांव आत्मनिर्भर होते थे।

क्या आप जानते हैं?

उस समय भी भारत का विदेशो से व्यपारिक सम्बन्ध था। जिसके अन्तर्गत वस्तुओं का आयात-निर्यात किया जाता था।

निर्यातक वस्तुएं : कपड़े, चावल, गेहूं, रेशम, चीनी आदि।

आयातक वस्तुए : नमक, कस्तूरी, रेशम, केसर, मेवे।

समकालीन लेखन में गुजरात तट पर 84 बन्दरगाहों का उल्लेख है। इनमें प्रमुख थी - खंभात, पाटन, सोमनाथ, भरूच। यहां लगभग 300 जहाज प्रति वर्ष आते थे।

गतिविधि

अध्यापक विद्यार्थियों को अपने क्षेत्र के महत्वपूर्ण मंदिर/ ऐतिहासिक किला/ बांध इत्यादि का भ्रमण कराएं एवं उसका महत्व समझाएं।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

माइंड मैप

उत्तर भारत के 13वीं से 15वीं सदी के राज्य

↓

दिल्ली सल्तनत के प्रमुख शासक	सल्तनत राज्य का स्वरूप	स्थानीय राज्य	राजपूत राज्यों का स्वरूप
-इल्तुतमिश	-शासन व्यवस्था	-बंगाल	-शासन व्यवस्था
-रज़िया बेगम	-राज्य के अन्य अधिकारी	-गुजरात	-सैनिक व्यवस्था
-बलबन	-प्रांतीय प्रशासन	-मेवाड़	-न्याय व्यवस्था
-अलाउद्दीन ख़िलजी	-सैन्य-संगठन	-जौनपुर	-सामाजिक जीवन
-मोहम्मद-बिन-तुगलक	-न्याय-प्रबंध	-मालवा	-आर्थिक स्थिति
	-समाज	-रणथंभोर	

आओ जानें, कितना सीखा

सही उत्तर छांटें :

1. ग्यासुद्दीन तुगलक ने .... में बंगाल पर आक्रमण किया।
   क) 1204 ई. ख) 1357 ई. ग) 1324 ई. घ)1300 ई.

2. निम्न में से कौन 1411 ई. में गुजरात का शासक बना?
   क) मलिक काफूर ख) रतन सिंह ग) राणा हमीर घ) अहमद शाह

3. मेवाड़ के किस राजा ने कविराज वाणी विलास और योगेश्वर नामक विद्वानों को आश्रय प्रदान किया था?
   क) मोकल सिंह ख) क्षेत्र सिंह ग) लाखा सिंह घ) राणा कुंभा

4. निम्न में से किस राज्य का सम्बन्ध राणा कुंभा से था?
   क) जौनपुर ख) मेवाड़ ग) मालवा घ) रणथम्भोर

5. दिल्ली में बनी कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद .... द्वारा बनाई गई।
   क) ग्यासुद्दीन गौरी ख) कुतुबुद्दीन ऐबक ग) रज़िया सुल्तान घ) बलबन

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

रिक्त स्थान की पूर्ति करें :

1. बंगाल को सबसे पहले .... के सेनानायक मोहम्मद बिन बख्तियार ख़िलजी ने .... में जीता था।
2. रज़िया बेगम की हत्या .... के पास की गई थी।
3. गोरा और बादल .... राज्य के महान सेनापति थे।
4. 'पूर्व का शिराज' .... शहर को कहा जाता था।
5. बलबन को हरियाणा में .... व .... जागीरें प्राप्त थी।

मिलान करें :

1. ढाई दिन का झोपड़ा — क) दीवान- ए- वजारत
2. कबीर खां — ख) मोहम्मद-बिन-तुगलक
3. दौलताबाद — ग) लाहौर के सूबेदार

4. ग्राम — घ) अजमेर
5. वजीर — ड़) प्रशासन की सबसे छोटी इकाई

निम्नलिखित कथनों में सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाओ :

1. सल्तनत काल में भारतीय समाज स्पष्टत: दो वर्गों में बंटा हुआ था। ( )
2. बलबन ने तुगरिल बेग के विद्रोह को दबा कर अपने बेटे बुगरा खां को सूबेदार नियुक्त किया। ( )
3. आज़म खान ने अमेरिका के साथ कूटनीतिक संबंध स्थापित किए थे। ( )
4. महमूद बेगड़ा ने 40 वर्ष तक गुजरात पर राज्य किया। ( )
5. गहलोत और सिसोदिया वंश के राजाओं ने लगभग 1200 वर्ष तक मेवाड़ पर शासन किया। ( )

लघु उत्तर वाले प्रश्न :

1. बंगाल के एक भाग को सबसे पहले किस मुस्लिम सेनापति ने कब और कैसे जीता था?
2. सिंध अभियान में फिरोजशाह तुगलक का सम्बन्ध कितने दिनों तक अपनी राजधानी से कटा रहा?
3. अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर अधिकार कब और किसको पराजित करके किया?
4. उत्तर भारत पर बार-बार विदेशी आक्रमण क्यों हुए? उनमे से कुछ आक्रमणकारियों के नाम बताइए।
5. इल्तुतमिश के समय में उलेमा (मुस्लिम धार्मिक वर्ग) हिन्दुओं को कौन-सा विकल्प देना चाहता था?

आइए विचार करें :

1. मोहम्मद-बिन-तुगलक की प्रमुख योजनाएं क्या थीं? वे क्यों असफल रहीं?
2. रज़िया सुल्तान कौन थी? अपने शासन काल में उसको किन लोगों के विद्रोह का सामना करना पड़ा और क्यों?
3. मोहम्मद-बिन-तुगलक द्वारा कृषि से संबंधित किए गए सुधारों का संक्षेप में वर्णन करें।
4. मालवा 13वीं शताब्दी के अंत तक एक महत्वपूर्ण राज्य रहा है, उस पर शासन करने वाले शासकों की एक सूची बनाए।
5. राजपूत राज्यों की शासन व्यवस्था पर विश्लेषणात्मक टिप्पणी कीजिए।
6. सल्तनतकालीन राज्यों के प्रशासन में कौन-कौन से अधिकारी होते थे? उनके विभागों का भी वर्णन करें।

आओ करके देखें

1. पाठ में आए विभिन्न स्थानों एवं राज्यों को भारत के मानचित्र पर दर्शाएं।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

अध्याय - 9

विजयनगर साम्राज्य

आओ जानें

- राजनीतिक इतिहास - संगम वंश, सलुव वंश, तुलुव वंश एवं अरविदु वंश
- कृष्णदेवराय - उपलब्धियां एवं योगदान
- विजयनगर का प्रशासन

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में विजयनगर साम्राज्य का उद्भव व विकास एक महान क्रान्तिकारी घटना मानी जाती है। दक्षिण भारत में विजयनगर के शासकों ने ही तुगलक वंश के विरुद्ध विजय पताका फहराई। सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में विजयनगर साम्राज्य का वैभव अपने चरमोत्कर्ष पर था। लगभग तीन शताब्दियों तक इस साम्राज्य ने भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखा। यहां के शासकों ने शानदार नगरों की स्थापना, भव्य भवनों का निर्माण और कला, हस्तशिल्प, साहित्य एवं धर्म को संरक्षण दिया। उन्होंने उच्चकोटि की प्रशासनिक व्यवस्था भी स्थापित की। समस्त पुरातात्विक सामग्री (भवन, अभिलेख व सिक्कों) के अध्ययन एवं उपलब्ध साहित्य के आधार पर हम इस साम्राज्य के इतिहास से परिचित हो सकते हैं।

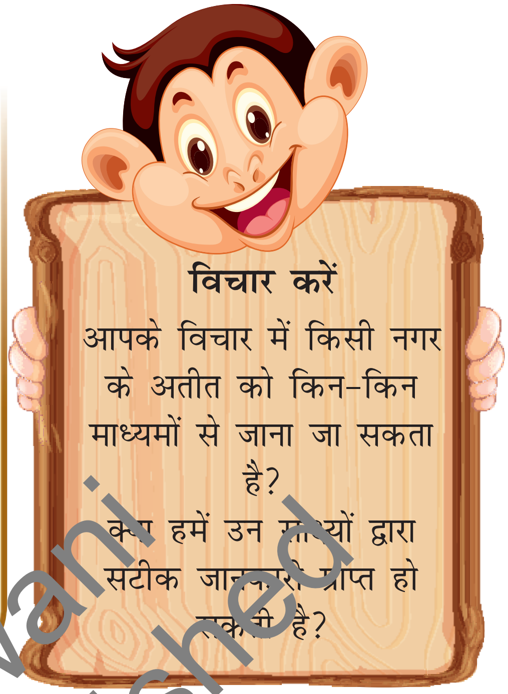

विजयनगर का शाब्दिक अर्थ 'विजय का नगर' है। तुंगभद्रा नदी के किनारे संगम बंधुओं ने अपनी विजय स्मृति में इसे बसाया था। उत्तर में कृष्णा नदी से लेकर दक्षिण में सुदूर प्रायद्वीप तक विजय नगर साम्राज्य का फैलाव था। आधुनिक समय में विजयनगर के अवशेष हमें हम्पी नामक स्थान से प्राप्त होते हैं। स्थानीय मातृ देवी 'पम्पा देवी' के नाम से इस स्थान का नामकरण हम्पी हुआ।

राजनीतिक इतिहास

तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी तट पर विजयनगर राज्य की स्थापना का श्रेय 'हरिहर' और 'बुक्का' नामक दो भाइयों को जाता है। प्रारंभ में वे होयसल शासक प्रताप रुद्र द्वितीय की सेवा में थे। 1323 ई. में जब काकतीय राज्य पर दिल्ली के सुल्तानों का अधिकार हो गया तब वे कंपिली राज्य में मंत्री पद पर आसीन हो गए। मोहम्मद तुगलक ने जब कंपिली को जीत लिया तब इन दोनों भाइयों को भी कैद में डालकर मुस्लिम धर्म स्वीकार करने पर विवश किया गया। कंपिली में विद्रोह होने पर तुगलक ने इन्हीं दोनों को वहां विद्रोह दबाने भेजा। इन्होंने कंपिली पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। कापच नायक और वीर बल्लाल तृतीय की दिल्ली सल्तनत के विरुद्ध सफलता से प्रेरित होकर इन्होंने भी स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का निश्चय किया। संत विद्यारण्य के गुरु और श्रृंगेरी मठ के मठाधीश विद्यातीर्थ द्वारा उन्हें पुनः हिंदू धर्म में प्रवेश करवाया गया। उन्होंने स्वयं को स्वतंत्र शासक घोषित कर तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी तट पर विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

हरिहर प्रथमः 1336 ई.–1356 ई.

हरिहर प्रथम इस राज्य का प्रथम शासक था। उसने अनेगुंडी को अपनी राजधानी बनाया। बाद में उसने अपनी राजधानी विजयनगर में स्थापित की। विजयनगर के महान अवशेष आज के हम्पी में विद्यमान है। हरिहर ने अपनी योग्यता से बादामी, उदयगिरि और गुट्टी के दुर्गों को सुदृढ़ किया। हरिहर ने 1346 ई. मे होयसल राज्य और मदुरा के शासकों को परास्त किया। इस प्रकार हरिहर ने अपने भाई बुक्का प्रथम की सहायता से एक विस्तृत एवं सुदृढ़ शासन की स्थापना की।

बुक्का प्रथम : 1356 ई.–1377 ई.

विजयनगर साम्राज्य व बहमनी सल्तनत में तीन मुख्य क्षेत्रों तुंगभद्रा दोआब, कावेरी–गोदावरी डेल्टा व कोंकण क्षेत्र को लेकर परस्पर टकराव था । इन क्षेत्रों में उपजाऊ भूमि तथा विदेशी व्यापार के लिए अनेक बंदरगाह थे। दोनों ही राज्य दक्षिण भारत में अपनी श्रेष्ठता स्थापित करना चाहते थे। बुक्का के समय में कृष्णा नदी को बहमनी और विजयनगर राज्य की सीमा मान लिया गया। बुक्का ने अपने पुत्र कम्पन की सहायता से मदुरै को विजय किया। कम्पन की पत्नी गंगादेवी की पुस्तक 'मदुराविजयम्' में इस विजय का विस्तार से वर्णन दिया गया है।

उसने अपने राज्य को सुदूर दक्षिण में रामेश्वरम तक विस्तृत कर दिया। बुक्का ने विदेशी व्यापार के लिए 1374 ई. में अपना एक दूत मण्डल चीन भेजा। उसने 'वेदमार्ग–प्रतिष्ठापक' की उपाधि ग्रहण की। बुक्का प्रथम के दरबार में सायणाचार्य नामक वेदों का महान भाष्यकार था। उसने वेद और अन्य धार्मिक ग्रंथों की नवीन टीकाएं लिखवाई तथा तेलुगु साहित्य को प्रोत्साहित किया। बौद्ध, जैन, ईसाई तथा मुस्लिम सभी धर्मों को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की जो अंत तक विजयनगर राज्य की नीति बनी रही।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते हैं?

दोआब : दोआब उर्दू भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है दो बड़ी नदियों के मध्य की भूमि जो कृषि के लिए काफी उपजाऊ होती है। आब का अर्थ पानी है। यहां पर जनसंख्या घनत्व काफी सघन मात्र में पाया जाता है। विश्व की लगभग सभी प्राचीनतम सभ्यताओं का उदय ऐसे दोआब के मध्य हुआ था।

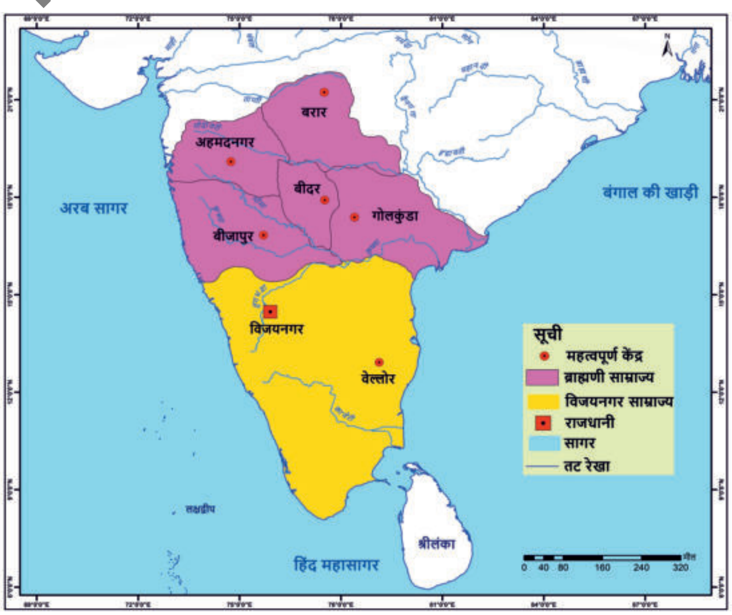

मानचित्र-9.1 – विजयनगर साम्राज्य

हरिहर द्वितीय : 1377 ई.–1404 ई.

हरिहर द्वितीय ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। उसने कनारा, मैसूर, त्रिचनापल्ली, कांची आदि प्रदेशों को जीता। उसकी सबसे महान सफलता बहमनी राज्य से पश्चिमी क्षेत्र कोंकण व गोवा छीनना था। हरिहर द्वितीय शिव के विरुपाक्ष रूप का उपासक था।

देवराय प्रथम : 1406 ई.–1422 ई.

हरिहर द्वितीय की मृत्यु के बाद क्रमशः विरुपाक्ष प्रथम और बुक्का द्वितीय उत्तराधिकारी बने। 1406 ई. में देवराय प्रथम शासक बना। देवराय प्रथम के समय में तुंगभुद्रा–दोआब को लेकर पुनः बहमनी राज्य से युद्ध छिड़ गया। देवराय प्रथम ने वारंगल के शासकों से गठजोड़ कर लिया। वारंगल द्वारा बहमनी सल्तनत का साथ छोड़ने से दक्कन में शक्ति–संतुलन बदल गया। देवराय फिरोजशाह बहमनी को करारी मात देने में सफल रहा। देवराय ने जल की कमी को दूर करने के उद्देश्य से तुंगभद्रा नदी पर एक बांध बनवाया। उसने सिंचाई के लिए हरिहर नदी पर भी एक बांध बनवाया। उसके दरबार में 'हरविलास' ग्रंथ के रचियता प्रसिद्ध तेलुगू कवि श्रीनाथ थे। इसके शासन काल में इटली निवासी यात्री निकोलोकोण्टी ने 1420 ई. में विजयनगर की यात्रा की। निकोलो द कोण्टी राज्य में मनाए जाने वाले त्यौहार दीपावली व नवरात्र का उल्लेख अपने यात्रा वृतांत में करता है। नगर के विषय में वह लिखता है, "नगर की परिधि 96 कि.मी. थी और उसमें 90000 सैनिकों की शक्तिशाली सेना भी निवास करती थी।"

देवराय द्वितीय : 1422 ई.–1446 ई.

देवराय द्वितीय विजयनगर का महानतम शासक था। विजयनगर इतिहास में उसे 'इम्मादि देवराय' के नाम से जाना जाता है। उसने 2000 तुर्की धनुर्धरों को अपनी सेना में भर्ती किया। उसके और बहमनी राज्य के बीच एक के बाद एक तीन लड़ाइयां हुई परंतु कोई परिणाम नहीं निकला इसलिए दोनों पक्षों को मौजूदा सीमाओं पर सहमत होना पड़ा। उसने अपने शासन काल में अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार श्रीलंका द्वीप तक किया। उसके समय में फारसी राजदूत अबदुर्रज्जाक ने विजयनगर की यात्रा की। उसके अनुसार "विजयनगर संसार के सबसे शानदार नगरों में से एक था ।" उसने राज्य के वैभव और ऐश्वर्य की भी प्रशंसा की।

व्यक्तिगत गतिविधि

- आधुनिक भारत के मानचित्र में उन राज्यों की पहचान करें जिनमें विजयनगर साम्राज्य फैला हुआ था?
- आपके आसपास के क्षेत्र में कौन–कौन सी प्रमुख नदियों के दोआब हैं?

©BSEH Bhiwani, Not to be republished

विजयनगर साम्राज्य के प्रमुख राजवंश

राजवंश	संस्थापक	शासनकाल
संगम वंश	हरिहर व बुक्का	1336 ई.–1485 ई.
सलुव वंश	नरसिम्हा सलुव	1485 ई.–1505 ई.
तुलुव वंश	वीर नरसिंहा	1505 ई.–1570 ई.
अरविदु वंश	तिरुमल्ल	1570 ई.–1650 ई.

सलुव वंश

संस्थापक
नरसिम्हा सलुव
शासनकाल
1485 ई.–1505 ई.

देवराय द्वितीय के बाद संगम वंश के कुछ कमजोर शासकों के बीच गृह युद्ध हुए, जिसमें राज्य के सामंतों को स्वतंत्र होने का अवसर मिल गया। ऐसी स्थिति में राज्य के मंत्री नरसिम्हा सलुव ने सत्ता हथिया कर सलुव वंश की नींव रखी। इसे विजय नगर इतिहास में प्रथम बलापहार कहा जाता है।

1490 ई. में नरसिम्हा सलुव की मृत्यु के बाद उसका अल्पवयस्क पुत्र इम्माडि नरसिंह विजयनगर का शासक बना तथा नरसा नायक को उसका संरक्षक नियुक्त किया गया। 1505 ई. में सत्ता अधिकार के प्रश्न पर नरसा नायक के पुत्र वीर नरसिंह ने इम्माडि नरसिंह की हत्या कर दी तथा राजगद्दी पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

बलापहार – शासकीय व्यक्ति द्वारा शक्ति का प्रयोग करके राज सिंहासन पर अधिकार कर लेना बलापहार कहा जाता था।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

क्या आप जानते हैं?

1800 ई. में कलिंग मैकेंजी ने सर्वप्रथम हंपी पर शोध कार्य आरंभ किया। उसने हंपी का प्रथम सर्वेक्षण मानचित्र तैयार किया। विरुपाक्ष, पम्पा देवी पुरातात्विक सामग्री, विदेशी यात्रियों के विवरण तथा स्थानीय साहित्य के अध्ययन से हंपी के महान साम्राज्य की खोज संभव हुई।

तुलुव वंश

संस्थापक
वीर नरसिंहा
शासनकाल
1505 ई.–1570 ई.

वीर नरसिंहा ने सलुव वंश के स्थान पर 1505 ई. में तुलुव वंश की स्थापना की। विजय नगर के इतिहास में इसे द्वितीय बलापहार कहा जाता है। उसके इस अपराध के कारण विजयनगर की जनता में आक्रोश फैल गया तथा जनता ने उसे अपना राजा स्वीकार नहीं किया। 1509 ई. में उसका सौतेला भाई कृष्णदेवराय विजयनगर का शासक बना। कृष्ण देवराय को उसकी सैनिक, असैनिक उपलब्धियों के कारण तुलुव वंश का ही नहीं बल्कि विजयनगर साम्राज्य का सबसे महान शासक माना जाता है। उसने न केवल विजयनगर साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार किया अपितु एक संगठित एवं सुदृढ़ शासन की स्थापना भी की। सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से उसका राज्य विश्व प्रसिद्ध था।

कृष्णदेवराय : 1509 ई.–1529 ई.

कृष्णदेवराय विजयनगर साम्राज्य का सबसे महान शासक था। उसने अपनी योग्यता से विजयनगर को उन्नति के शिखर तक पहुंचा दिया। बाबर ने अपने अपनी आत्मकथा बाबरनामा में जिन भारतीय राज्यों का वर्णन किया है उनमें विजयनगर के शासक कृष्णदेवराय का भी विवरण है। इतिहासकार डॉ आर. सी. मजूमदार ने उसके बारे में लिखा है कि "वह विजयनगर राज्य का सबसे महान शासक था तथा उसकी गिनती भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध शासकों में की जाती है। वह बहादुर सिपाही, सफल सेनापति, कुशल प्रशासक तथा कला व साहित्य का संरक्षक था।" उसके शासन काल में पुर्तगाली यात्री बारबोसा व डोमिंगो पायस ने यात्रा की तथा इन यात्रियों ने उसके शासन व्यवस्था की अत्यधिक प्रशंसा की है।

बहमनी साम्राज्य: 1346 ई. में हसन गंगू ने अलाउद्दीन हसन बहमन शाह नामक उपाधि धारण करके बहमनी साम्राज्य की स्थापना की। 1346 ई. से 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यह साम्राज्य संगठित एवं शक्तिशाली था। बाद में यह बीजापुर, अहमद नगर, बीदर, बरार एवं गोलकुंडा नामक पांच राज्यों में विभाजित होकर बिखर गया।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

उपलब्धियां एवं योगदान

(क) सैन्य उपलब्धियां

पड़ोसी राज्यों की सेना के लगातार हो रहे हमलों को रोकना कृष्णदेवराय का प्रथम उद्देश्य था। बीजापुर के शासक युसफ आदिलशाह व कृष्ण देवराय के मध्य 1509 ई. में कोविलकोण्डा के समीप युद्ध हुआ, जिसमें बीजापुर का शासक मारा गया। कृष्णदेवराय ने रायचूर, गुलबर्गा व बीदर पर अधिकार कर लिया। पुर्तगाली गवर्नर अल्बुकर्क ने कृष्णदेवराय का सहयोग लेने के लिए अरबी–फारसी घोड़े मात्र विजयनगर

को ही देने का प्रस्ताव रखा। पुर्तगालियों ने उससे भटकल में किला बनाने की अनुमति मांगी। कृष्णदेवराय ने इस प्रस्ताव को मान लिया व पुर्तगालियों से मित्रता स्थापित कर ली। कृष्णदेवराय ने उम्मात्तुर के विद्रोही सरदार गंगाराय को हरा कर मार डाला।

कृष्णदेवराय ने उड़ीसा की सेनाओं को हराकर तेलंगाना क्षेत्र को जीत लिया। उसकी विजयी सेनाएं कटक तक पहुंच गई। यहां के शासक प्रताप रुद्रदेव ने अधीनता स्वीकार करते हुए अपनी पुत्री का विवाह कृष्णदेवराय से कर दिया।

(ख) प्रशासनिक उपलब्धियां

कृष्णदेवराय ने विजयनगर राज्य को सुसंगठित किया। शांति व व्यवस्था स्थापित की। कृष्णदेवराय न्याय व्यवस्था, शासन व्यवस्था, कानून निर्माण, सैन्य संचालन आदि सभी का प्रधान था परंतु वह निरंकुश व स्वेच्छाचारी शासक नहीं था। उसने अपने राज्य में कृषि एवं व्यापार की उन्नति के लिए पर्याप्त प्रयास किए। जंगल साफ कर अधिक भूमि को कृषि योग्य बनाया तथा तालाब व नहरें खुदवाकर सिंचाई के साधनों में वृद्धि की। सैन्य व्यवस्था को भी सुसंगठित किया। उसने सेना में कठोर अनुशासन लागू किया।

चित्र-9.1 विजयनगर का राजचिन्ह

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

(ग) साहित्य को प्रोत्साहन

कृष्णदेवराय कला व साहित्य का महान संरक्षक था। वह 'आंध्र भोज' के नाम से प्रसिद्ध था। उसके दरबार को अष्ट दिग्गज के रूप में प्रख्यात आठ तेलुगु कवि एवं विद्वान सुशोभित करते थे। इन तेलुगु कवियों में पेड्डन सर्वप्रमुख थे। वह संस्कृत और तेलुगु दोनों भाषाओं के महापंडित थे। कृष्णदेवराय स्वयं भी विद्वान थे। उसने तेलुगु में 'आमुक्तमाल्यद' तथा संस्कृत में 'जांबावती कल्याणम्' नामक ग्रंथों की रचना की।

(घ) धार्मिक सहिष्णुता

कृष्णदेवराय की धार्मिक सहिष्णुता की जानकारी देते हुए उसके काल में आए विदेशी यात्री दुआर्ते बारबोसा अपने यात्रा वृतांत में लिखता है "राजा इतनी स्वतंत्रता देता है कि चाहे इसाई हो या यहूदी, हब्शी हो या विधर्मी, हर व्यक्ति अपनी इच्छा अनुसार आ-जा सकता है और अपने धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत कर सकता है। उसे इसके लिए किसी प्रकार की नाराज़गी नहीं झेलनी पड़ती है और न ही उसके बारे में यह जानकारी हासिल करने की कोशिश की जाती है।"

विजयनगर के विषय में पायस का वर्णन

इस शहर का परिमाप मैं यहां नहीं लिख रहा हूं क्योंकि यह एक स्थान से पूरी तरह नहीं देखा जा सकता। मैं एक पहाड़ पर चढ़ा जहां से मैं इसका एक बड़ा भाग देख पाया। वहां से मैंने देखा तो यह मुझे रोम जितना विशाल प्रतीत हुआ। यह देखने में अत्यंत सुंदर है। इसमें पेड़ों के कई उपवन है। आवासों के बगीचों में पानी की कई नालियां आती है, इसमें अनेक सुंदर तालाब हैं।

(ड.) वास्तु कला में योगदान

कृष्णदेवराय के समय में विजयनगर में वास्तु कला की द्रविड शैली उन्नति के चरम पर थी। उसने मण्डप, गोपुरम, विशाल भवन व मंदिरों का निर्माण करवाया। उसने राजधानी को भी काफी भव्य रूप दिया जिसकी प्रशंसा विदेशी यात्री पायस इस प्रकार करता है "आकार में वह रोम के समान विशाल एवं विस्तृत है। इस नगर में असंख्य लोग निवास करते हैं। इसके बाजारों में सम्पूर्ण विश्व की ऐसी कोई वस्तु नहीं जो न बिकती हो।" वास्तुकला के क्षेत्र में कृष्णदेवराय ने अपनी राजधानी में विट्ठलस्वामी मंदिर, हजारास्वामी मंदिर व चिदम्बरम मंदिर का निर्माण करवाया। उसने अपनी माता नागम्बा की याद में नया शहर नागलपुरा निर्मित करवाया। इसके अतिरिक्त उसने गोपुरम तथा अन्य भवनों का भी निर्माण करवाया।

चित्र-9.2 हम्पी का विट्ठलस्वामी मंदिर

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

कृष्णदेवराय के अधीन न केवल विजयनगर साम्राज्य का विकास हुआ अपितु सुशासन, साहित्य, कला, धर्म आदि के क्षेत्रों में भी अनेक उपलब्धियों प्राप्त की। कृष्णदेवराय को दक्षिण भारत का महानतम शासक माना गया है। वास्तव में विजयनगर राज्य कृष्णदेवराय के शासनकाल में अपने गौरव तथा खुशहाली की चोटी पर पहुंच गया था।

द्रविड़ शैली दक्षिण भारत की हिंदू स्थापत्य कला की एक महत्वपूर्ण शैली है। दक्षिण में इसका उद्भव व विकास होने के कारण इसे द्रविड़ शैली कहा गया। इसमें भवन को तीन भागों में बांटा जाता है गोपुरम, गर्भगृह, शिखर। विशाल प्रवेश द्वार को गोपुरम कहा जाता है। मंदिर के आधार भाग जोकि वर्गाकार होता है और यहीं पर मुख्य मूर्ति होती है, गर्भगृह कहलाता है। गर्भगृह के ऊपर विशाल पिरामिडनुमा शिखर होता है। द्रविड़ शैली के भवन काफी विशाल व ऊंचे होते हैं। इनमें अनेक कक्ष, जलकुंड व अन्य छोटे मंदिर होते हैं।

विजयनगर का पतन व अरविदु वंश

संस्थापक
तिरुमल्ल
शासनकाल
1570 ई.-1650 ई.

कृष्णदेवराय की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए संघर्ष हुआ। उसके बाद अच्युतराय तथा सदाशिव राय गद्दी पर आसीन हुए। इस काल में राज्य की वास्तविक शक्ति कृष्णदेवराय के दामाद रामराय के हाथ में रही। रामराय एक योग्य शासन प्रबंधक था परंतु सफल कूटनीतिज्ञ नहीं था।

उसने बहमनी राज्य के खंडों (बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर) को एक-दूसरे के विरुद्ध सहायता देने की नीति अपनाई परंतु अंत में इन राज्यों ने विजयनगर के खिलाफ एक संयुक्त मोर्चा बनाकर 23 जनवरी 1565 को तलीकोट के युद्ध में उसे पराजित कर दिया। युद्ध के बाद लगभग 100 वर्षों तक विजयनगर पर अरविदु वंश का शासन रहा परन्तु विजय नगर दक्षिण भारत की राजनीति में कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं दे पाया तथा यह महान साम्राज्य धीरे-धीरे अपने पतन की ओर अग्रसर होता गया।

तलीकोट का युद्ध : यह युद्ध 1565 ई. में विजयनगर की सेनाओं व बहमनी शासकों बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुंडा की संयुक्त सेनाओं के मध्य लड़ा गया। विजयनगर की सेना का नेतृत्व प्रधानमंत्री रामराय कर रहा था। इस यद्ध में विजयनगर की सेना को इन राज्यों की संयुक्त सेनाओं ने हरा दिया। इसे राक्षसी-तागड़ी के युद्ध के नाम से भी जाना जाता है। विजयी सेनाओं ने विजयनगर शहर पर आक्रमण किया तथा नगर में आग लगा दी। इस प्रकार तलीकोट का युद्ध विजयनगर साम्राज्य के लिए पतन का कारण बना।

विजयनगर आने वाले प्रमुख विदेशी यात्री

शासक	यात्री	देश
देवराय प्रथम	निकोलो द कोण्टी	इटली
देवराय द्वितीय	अब्दुर्रज्जाक	ईरानी
कृष्णदेवराय	डोमिंगो पायस, बारबोसा	पुर्तगाल

विजयनगर का प्रशासन

विजयनगर के शासकों ने एक सुदृढ़ शासन व्यवस्था स्थापित की। उनकी शासन-प्रणाली हिंदू-परंपरा पर आधारित थी। विजयनगर के शासकों द्वारा रायों (सामंतों) को लगान मुक्त जमीन देने से इसका स्वरूप सामंतवादी बन गया था।

©BSEH Bhiwani Not to be republished

केंद्रीय प्रशासन

1 **राजा :** साम्राज्य की समस्त कार्यकारी, न्यायकारी व विधायी शक्तियां शासक में निहित होती थी अर्थात् निरंकुश राजतंत्रीय व्यवस्था होने के बावजूद विजयनगर के शासक न तो निरंकुश थे और न ही स्वेच्छाचारी। सभी शासक प्रजा-हितैषी थे। जनहित के कार्य करना अपना कर्तव्य समझते थे।

राजा के बड़े पुत्र को उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया जाता था। पुत्र न होने की दशा में राजपरिवार के किसी भी योग्य व्यक्ति को शासक अपना युवराज चुन लेता था।

2 **मंत्री परिषद् :** राजा की सहायता के लिए एक मंत्री परिषद् होती थी जिसमें प्रधानमंत्री, अन्य मंत्री, विभागों के प्रधान आदि राज्य के बड़े प्रमुख एवं योग्य व्यक्ति नियुक्त होते थे। इनकी संख्या बीस के निकट थी। वे प्रमुख विषयों पर राजा को परामर्श देते थे परंतु इसे मानना या न मानना राजा की इच्छा पर निर्भर करता था। राजा की सहायता के लिए रायसेन (राजा के मौखिक आदेशों को लिपिबद्ध करने वाला), कर्णिकम (लेखाधिकारी) तथा मुद्राकर्त्ता आदि प्रमुख थे।

क्या आप जानते हैं?

सप्तांग विचारधारा : कौटिल्य द्वारा रचित पुस्तक 'अर्थशास्त्र' प्राचीन भारतीय इतिहास व राजनीति की महान रचना है। सप्तांग विचारधारा अर्थशास्त्र से ली गई है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है सात अंग। शासन को चलाने के लिए कौटिल्य ने सात महत्वपूर्ण अंग बताए हैं। यह अंग इस प्रकार हैं : स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, सेना, मित्र एवं कोष। प्राचीन व मध्यकालीन हिंदू शासकों ने अपना शासन चलाने के लिए सप्तांग विचारधारा का प्रयोग किया।

3 **प्रांतीय व स्थानीय प्रशासन :** विजयनगर राज्य छह प्रांतों में बंटा हुआ था। प्रांतपति प्रांत का प्रधान था। उनके अधिकार विस्तृत थे। साम्राज्य प्रांत, वलनाडु, नाडु, स्थल व ग्राम आदि इकाइयों में विभक्त थे। ग्राम के मुखिया को गौडा कहा जाता था।

राजस्व प्रशासन

विजयनगर कृषि प्रधान राज्य था। राज्य की आय का मुख्य साधन भू-राजस्व था जो उपज का तिहाई या छठा भाग होता था। किसानों से चावल की उपज का एक-तिहाई भाग, रागी, चना आदि का एक-चौथाई भाग व बाजरे एवं अन्य शुष्क भूमि से उपज का छठा भाग कर के रूप में लिया जाता था। राज्य को सामंतों से भी कर व उपहार आदि प्राप्त होते थे। बंदरगाहों से कर तथा वाणिज्य से भी अधिभार वसूल किया जाता था। इसके अतिरिक्त बाजार कर, गृहकर, सिंचाई कर, चरागाह कर आदि भी राज्य की आय के मुख्य

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

साधन थे। न्यायालय द्वारा लगाए गए जुर्माने से भी राज्य को आय होती थी। कृष्णदेवराय की पुस्तक 'आमुक्तमाल्यद' के अनुसार राज्य की आय चार भागों पर खर्च की जाती थी- दान, राजा का व्यक्तिगत खर्च, घोड़ों की देख-रेख एवं सैन्य व राज्य की सुरक्षा।

आमुक्तमाल्यद : यह कृष्ण देवराय द्वारा रचित प्रसिद्ध तेलुगू रचना है। आमुक्तमाल्यद का शाब्दिक अर्थ होता है, मुद्रा या मणियों की माला। इस रचना को तेलुगु साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस पुस्तक में विजयनगर साम्राज्य के बारे में हमें विस्तार से जानकारी प्राप्त होती है।

न्याय प्रशासन

विजयनगर के राजा निष्पक्ष न्याय में विश्वास रखते थे। साम्राज्य के विभिन्न भागों में नियमित न्यायालय थे। ग्रामों में जाति पंचायतें व श्रेणी-संगठन भी न्याय का कार्य करते थे। इन सबके ऊपर राजा का न्यायालय था, जिसे सभा कहा जाता था। धर्म शास्त्रों में बताए गए कानूनों का पालन किया जाता था। दंड विधान कठोर था। मृत्युदंड, अंग-विच्छेद और संपत्ति को जब्त कर लिया जाना मुख्य दंड थे।

सैन्य प्रशासन

विजयनगर साम्राज्य की सेना ससंगठित व स्थायी थी। सेना का प्रमुख राजा होता था। पैदल, घुड़सवार, हाथी व तोपखाना सेना के प्रमुख अंग थे। विदेशों से उत्तम नस्ल के घोड़े आयात किए जाते थे। कृष्णदेवराय के समय हारमुज से 13000 अरबी नस्ल के घोड़े खरीदे गये थे। सेना का प्रमुख अधिकारी 'नायक' या 'पालिगार' कहलाता था। स्थाई सेना के अतिरिक्त जरूरत पड़ने पर राजा को अपने अधीन छोटे राजाओं व सामंतों से भी सेना प्राप्त होती थी। राजकीय सेना को नकद वेतन दिया जाता था परंतु पालिगर जैसे बड़े अधिकारियों को वेतन के बदले भू-क्षेत्र अनुदान दिया जाता था।

आर्थिक विकास

विजयनगर एक समृद्धशाली राज्य था। विभिन्न विदेशी यात्रियों ने उसकी धन-संपत्ति की प्रशंसा की थी। उनके वृत्तांतों से पता चलता है कि विजयनगर उस काल के विश्व में ज्ञात सबसे धनी राज्यों में से एक था। इटली निवासी यात्री निकोलो द कोण्टी, पुर्तगाल निवासी यात्री डोमिंगो पायस और ईरानी यात्री अब्दुर्रज्जाक ने उसकी समृद्धि की अत्यधिक प्रशंसा की। कोंटी ने लिखा है कि "यहां का राजा भारत के दूसरे सभी राजाओं से अधिक शक्तिशाली है।" अब्दुर्रज्जाक ने लिखा था "विजयनगर के समान न तो कोई शहर देखा है और न ही उसके समान विश्व में किसी नगर के बारे में सुना है।"

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

इसी प्रकार पुर्तगाली यात्री डोमिंगो पायस ने लिखा "यह विश्व का सबसे सुंदर शहर है जहां पर गेहूं, चावल, जौ, दालों और अन्य सभी वस्तुओं की भरमार है।" वह पुनः लिखता है – "यहां के राजा के पास असीमित संपत्ति, सैनिक और हाथी हैं क्योंकि यहां ये प्रचुर मात्र में उपलब्ध हैं। इस शहर में तुम्हें सभी देशों के निवासी मिलेंगे क्योंकि यहां के निवासी सभी देशों से कीमती पत्थरों, मुख्यतः हीरों का व्यापार करते हैं।" बारबोसा ने नगर की प्रशंसा करते हुए लिखा था" नगर बहुत विस्तृत और सघन बसा हुआ तथा भारत के हीरों, पेगू के लाल, चीन और अलेक्जेंड्रिया की रेशम, सिंदूर, कपूर, कस्तूरी तथा मालाबार की काली मिर्च और चंदन के व्यापार का मुख्य केंद्र स्थान है।"

चित्र-9.3 प्राचीन हंपी बाजार का दृश्य

चित्र-9.4 विजयनगर साम्राज्य में प्रचलित सिक्के

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

कृषि

विजयनगर कृषि प्रधान राज्य था। राज्य की कृषि व्यवस्था उत्तम थी। राजा कृषि की उन्नति में पर्याप्त योगदान देते थे। सम्पूर्ण भूमि को चार भागों में बांटा गया था। सिंचित, शुष्क, उद्यान और वन। यहां पर गेहूं, चावल, जौ, रागी, चना, बाजरा, दालों और अन्य सभी फसलों की खेती होती थी। विजयनगर के शासकों ने कई नहरों व तालाबों का निर्माण कर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करवाई जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई।

पुर्तगाली यात्री नूनीज ने सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि विजयनगर शहर में ही 'कमलपुरम' नामक जलाशय था। शासकों ने कृषि क्षेत्रों की किलेबंदी की। विशेषतौर पर विजयनगर शहर में सात परकोटे थे जिनमें पहले परकोटे के अंदर विशाल कृषि क्षेत्र व जलाशय थे। एक निश्चित मात्रा में कृषि पर कर भी लिया जाता था। यह कुल उपज का 1/6 से 1/3 भाग निर्धारित था।

चित्र-9.5 कृत्रिम जल प्रणाली

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

उद्योग, व्यापार व वाणिज्य

विजयनगर साम्राज्य में कपड़ा उद्योग, खनन उद्योग, धातु उद्योग व इत्र उद्योग का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है जो विजयनगर की समृद्धि के कारण थे।

विजयनगर साम्राज्य में अंतःक्षेत्रीय व्यापार, तटीय तथा समुद्री व्यापार उन्नति पर था। आंतरिक व्यापार के अतिरिक्त विजय नगर का व्यापार मलाया, बर्मा, चीन, अरब, ईरान, अफ्रीका, अबीसीनिया और पुर्तगाल आदि देशों के साथ होता था। काली मिर्च, कपड़ा, चावल, शोरा, चीनी, मसाले, इत्र आदि विदेशों को भेजे जाते थे तथा घोड़े, मोती, तांबा, कोयला, पारा, रेशम आदि विदेशों से मंगवाए जाते थे। व्यापार जल व स्थल दोनों मार्गों से होता था। भारत में जलयानों का भी निर्माण होता था।

चित्र-9.6 फारसी घोड़ों का व्यापारी

अब्दुर्रज्जाक के कथनानुसार "विजयनगर साम्राज्य में तीन सौ बंदरगाह थी।" पश्चिमी तट पर मालाबार क्षेत्र प्रमुख वाणिज्यिक केंद्र था, जहां कन्नूर का बंदरगाह था। इस प्रकार विजयनगर राज्य की समृद्धि से वहां की प्रजा सुखी एवं समृद्ध थी।

कला और साहित्य

कला और साहित्य की दृष्टि से भी विजयनगर राज्य प्रगतिशील रहा। वहां के शासकों ने कला और साहित्य को पूर्ण संरक्षण दिया। अनेक नगरों की स्थापना की, उनमें भव्य भवनों, मंदिरों आदि का निर्माण किया। साहित्यिक क्षेत्र में संस्कृत, तेलुगु, तमिल और कन्नड़ भाषा के साहित्य में रुचि ली।

चित्र-9.7 विरुपाक्ष मंदिर

भवन निर्माण कला

विजयनगर साम्राज्य में द्रविड शैली व मदुरै शैली अपनी चरम पर थी। विजयनगर की खुदाई में लगभग तीस भवनों के अवशेष मिले हैं जो आकार में काफी बड़े हैं। इनको महलों का नाम दिया गया है। शहर में सबसे ऊंचा और आकर्षक स्थान 'महानवमी डिब्बा' था। यह ग्यारह हजार वर्ग फुट में फैला चालीस फुट की ऊंचाई वाला मंच था। शाही क्षेत्र में एक अन्य सुंदर भवन 'कमलमहल' है। इसकी मेहराबों पर बहुत सुंदर डिज़ाइन बनाए गए हैं। इस भवन को कमल महल का नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि इन मेहराबों को दूर से देखने पर कमल जैसी आकृति बनती है। विजय नगर में एक क्षेत्र मंदिरों वाला है जो बहुत प्रसिद्ध है। यहां अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ। इनके निर्माण में भले ही द्रविड़ शैली का प्रयोग हुआ पर इनकी अपनी भी एक विशेष शैली है। इनमें स्तंभों का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है तथा खंभों पर घोड़ों की आकृतियां दर्शाई गई हैं। मंदिरों में मंडप या खुले दालान हैं, जिस पर देवता की मूर्ति बनाई गई है।

चित्र-9.8 महानवमी डिब्बे पर उकेरे दृश्य

चित्र-9.9 कमलमहल

विरुपाक्ष मंदिर, विट्ठलस्वामी मंदिर तथा हजारास्वामी मंदिर कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। चिद्म्बरम में ताड़पत्री तथा पार्वती मंदिर भी सुंदर हैं। कांचीपुरम के वृद्धराज तथा एकम्बरनाथ मंदिर, कल्याण मण्डप भी उल्लेखनीय हैं। इन मंदिरों के गोपुरम सबसे अधिक प्रभावशाली थे। भवन निर्माण कला के साथ मूर्ति-निर्माण कला, चित्रकला, संगीत व नृत्य कला में भी विशेष प्रगति हुई।

चित्र-9.10 खंभों पर घोड़ों की आकृतियां

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

महानवमी डिब्बा : यह लगभग 11000 वर्ग फीट के आधार पर 40 फीट की ऊंचाई तक बनी पत्थरों की मंचनुमा आकृति है। इसके उपयोग को लेकर विद्वानों में आज भी मतभेद है, फिर भी अधिकतर विद्वानों का मानना है कि विशेष अवसर पर धार्मिक अनुष्ठानों के समय पर यहां सम्राट व जनता इकट्ठा होती थी।

चित्र-9.11 महानवमी डिब्बा

साहित्य

विजयनगर के शासकों ने अनेक विद्वानों और साहित्यकारों को सरंक्षण दिया। विजयनगर के कई शासक स्वयं भी उच्च कोटि के विद्वान व साहित्यकार थे। उनके समय में संस्कृत, तेलुगु, तमिल और कन्नड़ भाषाओं के साहित्य का विकास हुआ।

- बुक्का राय के मंत्री माधवाचार्य ने न्यायशास्त्र पर एक महान ग्रंथ लिखा।
- सायणाचार्य ने वेदों पर टीकाएं लिखीं।
- बुक्का प्रथम ने तेलुगु साहित्य को प्रोत्साहन दिया।
- देवराज द्वितीय ने कवियों को संरक्षण दिया।
- राजा कृष्णदेवराय स्वयं उच्च कोटि के साहित्यकार थे। उनके काल में साहित्य के क्षेत्र में अद्भुत उन्नति हुई। उन्होंने 'आमुक्तमाल्यद' नामक तेलुगु में महान ग्रंथ की रचना की।

चित्र-9.12 विट्ठलस्वामी मंदिर

क्या आप जानते हैं?

विजयनगर की राजभाषा तेलुगु व लिपि नन्दिनागढ़ी थी।

उनके दरबार में तेलुगु के आठ महान कवि थे, जिन्हें अष्टदिग्गज कहा जाता था। रानी गंगा देवी ने 'मदुरा विजय' नामक ग्रंथ की रचना की थी।

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

इस प्रकार विजयनगर राज्य विस्तार, शक्ति, शासन संम्पन्नता, साहित्य और ललित कला आदि की प्रगति की दृष्टि से भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उसका महत्व इस दृष्टि से और भी अधिक हो जाता है कि उसने दक्षिण भारत में हिंदू धर्म, सभ्यता और समाज को एक लंबे समय तक सुरक्षित रख कर पल्लवित होने में सफलता दिलाई। डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव के शब्दों में "विजयनगर साम्राज्य ने दक्षिण में मुसलमानों के आक्रमणों के विरुद्ध हिंदू धर्म तथा संस्कृति की रक्षा करके एक महान ऐतिहासिक दृश्य को पूर्ण किया।"

माइंड मैप

विजयनगर साम्राज्य

राजवंश
- संगम वंश
- सलुव वंश
- तुलुव वंश
- अरविदु वंश

उपलब्धियां एवं योगदान
- सैन्य उपलब्धियां
- प्रशासनिक उपलब्धियां
- साहित्य को प्रोत्साहन
- वास्तुकला में योगदान
- धार्मिक सहिष्णुता

प्रशासन
- केंद्रीय प्रशासन
- राजस्व प्रशासन
- न्याय प्रशासन
- सैन्य प्रशासन
- आर्थिक विकास
- कृषि
- उद्योग
- व्यापार व वाणिज्य

कला और साहित्य
- भवन निर्माण कला
- साहित्य

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आओ जानें, कितना सीखा

सही उत्तर छांटें :

1. विजयनगर राज्य की स्थापना किसने की?
   क) हरिहर प्रथम और बुक्का राय प्रथम ख) कृष्णदेव राय
   ग) हरिहर द्वितीय घ) देवराय प्रथम

2. विजयनगर राज्य कितने प्रांतों में बंटा हुआ था?
   क) 6 ख) 7 ग) 10 घ) 5

3. 'वेदमार्ग प्रतिष्ठापक' की उपाधि किसने धारण की?
   क) कृष्णदेवराय ख) बुक्का प्रथम ग) देवराय प्रथम घ) हरिहर द्वितीय

4 'हरविलास' ग्रंथ की रचना किसने की?
   क) कवि श्रीनाथ ख) कृष्णदेवराय ग) पेड्डन घ) हरिहर प्रथम

5. कृष्णदेव राय ने अपनी माता नागम्बा की याद में किस शहर का निर्माण करवाया?

   क) नागलपुरा   ख) कंपिली   ग) मदुरा   घ) बांकापुर

रिक्त स्थान की पूर्ति करें :

1. विजय नगर साम्राज्य को .... नदी के दक्षिण तट पर बसाया गया था ।
2. .... ने संगम बंधुओं को पुनः हिंदू धर्म में प्रवेश करवाया।
3. विजयनगर के अवशेष आज भी .... में विद्यमान है।
4. तलीकोट का युद्ध .... के मध्य लड़ा गया।
5. हरिहर द्वितीय ने .... की उपाधि धारण की।

निम्नलिखित कथनों में सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाओ :

1. विजयनगर की राज भाषा संस्कृत थी। ( )
2. कृष्णदेवराय ने विट्ठलस्वामी, हजारास्वामी व चिदंबरम मंदिर का निर्माण करवाया। ( )
3. विजयनगर साम्राज्य में द्रविड़ शैली चरम सीमा पर थी। ( )
4. देवराय द्वितीय ने तीन हजार धनुर्धरों को अपनी सेना में भर्ती किया। ( )
5. कृष्णदेवराय के दरबार में तेलुगु कवियों में पेडूडन सर्वप्रमुख थे। ( )

मिलान करें :

1. गंगादेवी	क) तुलुव वंश
2. कृष्णदेवराय	ख) अबदुर्रज्जाक
3. कौटिल्य	ग) पम्पा देवी
4. देवराय द्वितीय	घ) मदुरा विजयम्
5. हंपी	ङ) अर्थशास्त्र

लघु उत्तर वाले प्रश्न :

1. कृष्णदेव राय द्वारा रचित प्रसिद्ध रचना आमुक्तमाल्यद किस भाषा में लिखी गई?
2. देवराय प्रथम के शासनकाल में किस इटली यात्री ने विजयनगर की यात्रा की?
3. किस महान शासक को विजयनगर इतिहास में इम्माडि देवराय से भी जाना जाता है?
4. तुलुव वंश की स्थापना किसने की?
5. किस नदी को बहमनी और विजयनगर राज्य की सीमा माना जाता था?

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

आइए विचार करें :

1. "कृष्णदेवराय विजयनगर साम्राज्य के महानतम शासक थे।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? तर्क सहित पुष्टि करें।
2. अध्याय में वर्णित स्थापत्य स्मारकों को सूचीबद्ध करें और उनमें से प्रत्येक की संक्षेप में व्याख्या करें।
3. विजयनगर की प्रशासनिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं क्या थीं?
4. विदेशी यात्रियों के विवरण के माध्यम से विजयनगर साम्राज्य का वर्णन करें?
5. विजयनगर साम्राज्य के पतन के कारणों का विश्लेषण करें।

आओ करके देखें

1. आप एक विदेशी व्यापारी के रूप में विजयनगर के बाजारों में भ्रमण कर रहे हैं। आप किस प्रकार इस भ्रमण का विवरण देंगे?

कल्पना करें

1. समुद्री व्यापारी किस प्रकार समुद्रों को पार करते थे? व कौन-कौन से तकनीकी यंत्रों का प्रयोग करते थे?

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

टिप्पणीयाँ

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

टिप्पणीयाँ

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished

टिप्पणीयाँ

©BSEH, Bhiwani
Not to be republished